दर्द

Dard

By

Rais Ahamad Jafari

लेखक

रईस अहमद जाफ़री

अनुवादक

शक्तिपाल "केवल"

प्रकाशक

नारायणदत्त सहगल एण्ड संज़

दरीबा कलाँ, दिल्ली।

प्रकाशक—
नारायणदत्त सहगल एण्ड संज़
दरीबा कलाँ, दिल्ली

प्रथम संस्करण
सन् १९५९

मूल्य : तीन रुपये पिचहत्तर नये पैसे

आवरण : द्वारकाधीश

मुद्रक—
हरबन्सलाल गुप्ता
इण्डिया प्रिंटर्स
एस्प्लेनेड रोड, दिल्ली-६

DARD RAIS AHAMAD JAFARI Rs. 3·75

१

◇◇◇

आज अनाथालय तनवीर-ए-इस्लाम का वार्षिक समारोह था। यह अनाथालय अपने प्रबन्धक शेख नूर मियाँ की सज्जनता और ईमानदारी के कारण बहुत ही उच्च स्थान रखता था। यहाँ अनाथ बच्चों की भली भाँति देखभाल तथा परवरिश होती थी। उनसे भीख मँगवाने का काम नहीं लिया जाता था। उनमें स्वाभिमान की प्रवृत्ति पैदा की जाती थी। उ[illegible] उचित शिक्षा दी जाती और हुनर सिखाया जाता था। उन्हें साफ और सुथरे ढंग से रखा जाता था। नूर मियाँ का सब बच्चों के साथ वही व्यवहार [illegible] जो स्नेही बाप का होनहार औलाद के साथ होता है। ये नन्हें और मासू[illegible] बच्चे भी उन्हें बहुत मानते और चाहते थे। उनके इशारों पर चलते थे और उनकी बात रद्द नहीं करते थे।

नूर [illegible]मियाँ के कारण अनाथालय शहर में बहुत नेकनाम था। प्रतिष्ठित [illegible]क अपनी सुविधानुसार उसकी सहायता किया करते थे। वार्षिक [illegible]ने सुनिश्चित ढंग से होता था। किसी बड़े आदमी को अध्यक्ष-पद [illegible] आमन्त्रित किया जाता था और शहर के तमाम प्रतिष्ठित सम्मि-[illegible] होकर धन द्वारा सहायता करते और इस तरह साल भर का खर्च [illegible] [illegible]प्राप्त हो जाता।

[illegible] अनाथालय में समारोह का प्रबन्ध हो रहा था। नूर मियाँ [illegible]मी चारों तरफ फिर रहे थे। कभी हाल को साफ करा रहे हैं, [illegible]ने बोर्डिंग में झाड़ू दिला रहे हैं। कभी बच्चों को नहाने-धोने [illegible] कपड़े पहनने का आदेश दे रहे हैं। कभी छोटे बच्चों को

डाँट-डाँटकर सावधान कर रहे हैं कि खबरदार जो नवाब दिलावर जंग के सामने कोई अशिष्टता की, मुँह से एक शब्द भी बेतुका निकलने न पाये। नवाब साहब पर ही इस अनाथालय का भविष्य निर्भर है। अगर वह सन्तुष्ट हो गये तो सारी आवश्यकताएँ साल भर के लिये पूरी हो जायेंगी। लड़के भी नूर मियाँ के आदेश तथा कथनानुसार आचरण कर रहे थे। थोड़ी ही देर में उन्होंने सारी इमारत को शीशे की तरह साफ और स्वच्छ बना दिया। और स्वयं भी बन-ठनकर नवाब साहब की प्रतीक्षा करने लगे।

थोड़ी देर बाद आतिथियों के आने का सिलसिला शुरू हो गया। शहर के प्राय: सभी प्रतिष्ठित तथा शिक्षित सज्जन विद्यमान थे। इतने में नवाब दिलावर जंग बड़ी शान से तथा वैभव का प्रदर्शन करते हुए पधारे। उपस्थित गण ने खड़े होकर उनका सम्मान किया। नवाब साहब अभिमान से अपनी जगह बैठ गया। नवाब साहब यद्यपि अभिजात वर्ग [illegible] सम्बन्ध रखते थे, तथापि उनके सीने में एक शरीफ और सज्जन का [illegible] था, जो गरीबों पर दया करता; अनाथों और विधवाओं की [illegible] सहायता करता; निराश्रित और बेआसराओं को सहारा देता था। व[illegible] अपने वर्ग के लोगों से इस ढंग से नहीं मिलते थे, जैसे गरीब और शरी[illegible] लोगों से स्नेह तथा सहानुभूति से पेश आते और मिलते। नवाब साहब[illegible] की लोक-प्रियता तथा प्रसिद्धि का यही रहस्य था।

नूर मियाँ ने नवाब साहब से अध्यक्ष-पद ग्रहण करने को क[illegible]ा। फि[illegible] एक मार्मिक और प्रभावशाली भाषण द्वारा अनाथ बच्चों की दयन[illegible] का चित्र प्रस्तुत किया। बहुत से लोगों की आँखों में आँसू आये। धनाढ्य व्यक्तियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया गया कि वे अप[illegible] प्रचुर धनराशि में से कुछ भाग इन बच्चों के लिये भी सुरक्षित रखें। य[illegible] बच्चे आगे चलकर उन्नति कर सकते हैं और अपनी बौद्धिक विशेषता के कारण अच्छे नागरिक और देश के होनहार सपूत बन सकते हैं। [illegible] न हो कि वे अधखिले फूल बिन खिले मुरझा जायें और अपनी बहार [illegible] सकें।

नूर मियाँ के भाषण के बाद एक अबोध बालक के नेतृत्व में कोरस के तर्ज पर एक दर्द भरी कविता सुनाई, जो अनाथावस्था की हृदय-विदारक प्रवृत्ति तथा धनी व्यक्तियों की सहायता की माँग पर आधारित थी। इस कविता ने जादू का काम किया। स्टेज पर धन बरसने लगा। नोटों और रुपयों का ढेर लग गया। नवाब साहब नूर मियाँ के भाषण से काफी प्रभावित हो चुके थे। इस कविता ने सोने पर सुहागे का काम किया। उन्होंने जेब से चेकबुक निकाली और दस हजार रुपये की सहायता अनाथालय को प्रदान की। समारोह समाप्त हो गया। नूर मियाँ ने नवाब साहब से प्रार्थना की, कि वह अपनी आँखों द्वारा अनाथालय का सर्वेक्षण करें। नवाब साहब ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्होंने एक-एक कमरे को देखा। अनाथ बच्चों के रहने-सहने, खाने-पीने तथा पढ़ने-लिखने की प्रणालियों का विस्तृत निरीक्षण किया। जाती बार जिस कमरे का उन्होंने निरीक्षण किया, वहाँ घटनावश वह लड़का फिर नजर आया जिसने हॉल के अन्दर दर्द भरी कविता पढ़कर एक हृदय-स्पर्शी वातावरण पैदा कर दिया था। नवाब साहब एक चारपाई पर बैठ गये और लड़के से स्नेह-युक्त स्वर में पूछा—

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"इकबाल !"

"नाम तो बड़ा अच्छा है। हाँ यह बताओ, तुम पढ़-लिखकर क्या बनना चाहते हो ?"

"डाक्टर !"

नवाब साहब मुस्कराये। उन्होंने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा—

"शाबाश ! जिनकी हिम्मत बुलन्द होती है वह गरीबी की गोद में पल कर भी सब कुछ बन सकते हैं। तुम जरूर बनोगे डाक्टर। हम तुम्हें त ीम दिलायेंगे। हम तुम्हें डाक्टरी पढ़ायेंगे। हमारे साथ चलोगे ? हमारे ोगे ?"

बाल आश्चर्य से उनकी ओर देखने लगा और खामोश रहा।

फिर वह नूर मियाँ से अभिहित हुए—

"बड़ा होनहार बच्चा है। इसे तो आप हमें दे दीजिये।"

नूर मियाँ इस वक्त मजे में थे, मुस्कराते हुए बोले—

"बन्दे को क्या उजर हो सकता है। अगर यतीम खाने के सारे बच्चों को हजूर अपने साथ में जगह दें तो जहे किस्मत !"

नवाब साहब मुस्कराये। उन्होंने फरमाया—

"पहले मेरा एक तजुर्बा कामयाब होने दीजिये !"

नूर मियाँ ने इकवाल से कहा—

"बेटे अपनी किस्मत पर फ़ख्र करो कि तुम नवाब साहब के साथ में पलो और परवान चढ़ोगे। उठाओ सामान, नवाब साहब तुम्हें अपने साथ ले जायेंगे।"

इकबाल एक छोटी सी पोटली में अपना थोड़ा सा सामान बाँध कर नवाब साहब के साथ हो लिया। और वह उसे लेकर अपनी शानदार मोटर में बैठे और कोठी की तरफ रवाना हो गये।

२

एक शानदार कोठी के सामने नवाब साहब की मोटर आकर रुकी। मुलाजिम ने बढ़कर दरवाजा खोला। नवाब साहब नीचे उतरे और फिर उन्होंने मोटर के अन्दर झाँककर कहा—

"आओ इकबाल; आज से तुम इस घर में रहोगे।"

इकबाल मोटर से उतरा। नौकर-चाकर सम्मान से पंक्तिबद्ध खड़े थे। नवाब साहब कोठी के शानदार रास्तों से गुजरते हुए इकबाल के साथ अन्दर आये। अब्बा-अब्बा, कहकर उनकी मासूम बच्ची सुरैया चिमट गई और इकबाल को तकने लगी। उन्होंने उसे प्यार किया तथा बेगम साहिबा से कहा—

"बड़ा होनहार और प्यारा बच्चा है।"

"हाँ, यह तो मैं देख रही हूँ।"

"मैं इसे ले आया।"

"कौन है यह ? कहाँ से लाये हो ?"

"यह एक यतीम बच्चा है। यतीम खाने से लाया हूँ। (ठण्डी साँस भरकर) यह नहीं जानता माँ की गोद क्या चीज होती है। इसे नहीं मालूम कि बाप का प्यार किसे कहते हैं ? मैं इसका बाप बन चुका। क्या तुम इसकी माँ बनना पसन्द करोगी ?

इकबाल बेचारगी से बेगम साहिबा की तरफ देख रहा था। उन्होंने बड़े प्यार से उसे अपनी गोद में बिठा लिया और कहा—

"हाँ, मैं इसकी माँ बनूँगी और इसे इतना ही चाहूँगी, जितना सुरैया

को चाहती हूँ। वह मेरी एक आँख है, यह दूसरी बन जायेगा।"

नवाब साहब ने सुरैया से कहा—

"अरे बेटी ! तुम खड़ी हुई हो। अपने मेहमान को घर और बाग़ की सैर तो कराओ।"

सुरैया ने इकबाल का हाथ पकड़ा और आगे बढ़ गयी। इकबाल धीरे-धीरे उसके साथ चल पड़ा। दोनों की उम्र में मुश्किल से दो वर्ष का फर्क होगा। वह नौ-साढ़े नौ वर्ष का था और यह सात-साढ़े सात साल की। लेकिन दोनों की शकल और हालत में जमीन-आसमान का फर्क था। वह एक सुगन्धित पुष्प थी, जिसकी महक से दिमाग ताजा होता था। चेहरे की लाली, बदन पर अमीराना कपड़े और यह एक मसली और रौंदी हुई पत्ती थी, जिसमें न रूप था, न रंग, न महक। चेहरा सूखा, आँखों में मायूसी की झलक; चाल में बीमारों की सी दुर्बलता, बातों में लिहाज और शिष्टता। सुरैया अपने नये महमान को साथ ले तो आई, लेकिन विशेष खुश नहीं थी। वह मन ही मन में अपने पिता पर रुष्ट हो रही थी कि किसे लाकर उसके पल्ले डाला है। जिसकी सूरत देखा तो मालूम होता है—बस रोया ही चाहता है। जिसके कपड़े उसकी नौकरानियों से भी घटिया हैं। जिसकी बातों में एक अजीब तरह की बेबसी झलकती है। लेकिन बाप का हुक्म वह टाल नहीं सकती थी। इकबाल को लेकर अपने बागीचे में आई और सैर कराती हुई बोली—

"यह बागीचा मेरी सैर के लिये हजूर अब्बा ने तैयार करवाया है।"

इकबाल खामोश रहा। सुरैया आगे बढ़ी और फिर बोली—

"यह चबूतरा देख रहे हो ना ?"

वह शिष्टता से बोला—

"जी, देख रहा हूँ।"

सुरैया ने अभिमान से कहा—

"इस पर फर्श बिछता है, फिर शामयाना लगता है। अच्छे-अच्छे कालीन और गालीचे बिछाये जाते हैं। फिर मैं अपनी सहेलियों के झुर-

मुट में यहाँ मलिका बनकर बैठती हूँ। वे नाचती हैं, गाती हैं और मेरा दिल बहलाती हैं।"

इकबाल खामोश सुरैया की बातें सुन रहा था। वह आगे बढ़ी और एक फव्वारे की ओर संकेत करके बोली—

"यह फव्वारा तुमने देखा ?"

"जी !"

"यह अब्बा हजूर ने मेरे लिए बनाया है; कितना अच्छा लगता है !"

"जी, बहुत।"

एक जगह रुककर सुरैया ने फिर इकबाल को सम्बोधित किया—

"सावन में हम यहाँ झूला डालकर झूलती हैं। और इत्ते बड़े पींग लेते हैं, तुम देखो तो डर जाओ।"

और गरीब इकबाल वाकयी सहमकर सुरैया को देखने लगा। उसकी स्थिति का आभास किये बगैर सुरैया अपने वैभव का वर्णन फिर करने लगी—

"मेरी सालगिरह को तो बड़ी बहार होती है। नौ मन तेल से कोठी में चिराग जलाये जाते हैं, दीये ऐसे टिमटिमाते हैं, जैसे आकाश पर तारे। दूर-दूर तक रोशनी जाती है। मेरी सालगिरह का जोड़ा छः महीने तक तैयार होता रहता है। शहर भर में रईसों की लड़कियाँ खूब बन-सँवर-कर अपने ठाठ दिखाती हुई आती हैं। फिर मुझे मोतियों में तोला जाता है।"

इस बार इकबाल का मुँह खुला। उसने उत्सुकता से पूछा—

"फिर क्या होता है ?"

सुरैया ने बड़े चाव से जवाब दिया—

"फिर ?...वह मोती, बहुत सी अशरफियाँ और रुपये गरीबों और यतीमों को बाँट दिये जाते हैं।"

फिर सुरैया ने इकबाल से पूछा—

"क्यों जी ; यतीम कौन लोग होते हैं ?"

इकबाल ने जवाब दिया—

"गरीबों की एक किस्म यतीम भी होते है ।"

"तो तुम गरीब हो ?"

"जी, बहुत ज्यादा गरीब···जिसका कोई सहारा नहीं, जिसका कोई घर नहीं, जिसका कोई सरपरस्त नहीं, जिसका बाप मर चुका, माँ अल्ला को प्यारी हुई ।"

सुरैया ने आश्चर्य से इकबाल की बातें सुनीं । वह पूरे तौर पर इन बातों की तह तक न पहुँच सकी । उसने वार्तालाप का विषय बदलते हुए कहा—

"तुम भी तो बताओ ; तुम्हारी सालगिरह में क्या-क्या होता है ?"

इकबाल खामोश रहा, सुरैया ने फिर अनुरोध किया—

"बताओ ना ; बताते क्यों नहीं ?"

इकबाल ने बड़े भोलपन के साथ कहा—

"मेरी सालगिरह ?"

"हाँ तुम्हारी, बताओ ।"

"अब तक तो मेरी सालगिरह मनाई नहीं गई ।"

सुरैया को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने कहा—

"अरे, यह क्यों ?"

"गरीब जो हूँ ; मेरा कोई है जो नहीं ।"

सुरैया ने बड़ी शान से पूछा—

"सच ?"

"जी हाँ ?"

"तुम फिक्र न करो, हम अपने साथ तुम्हारी सालगिरह भी बड़ी धूम-धाम से मनायेंगे ।"

इकबाल ने कृपायुक्त दृष्टि से सुरैया की ओर देखा और फिर उसके साथ चलने लगा । ये लोग घूमते-घूमते फिर फव्वारे की तरफ आगये ।

यह स्थान इकबाल को अच्छा लगा। उसने चाहा कि कुछ देर यहाँ बैठे तथा उस दृश्य से अवगत हो। उसने सुरैया से पूछा—

"आइये ; यहाँ बैठें !"

और वह वाकयी वहाँ बैठ गया। सुरैया ने खड़े-खड़े जवाब दिया—

"नहीं, हम घास-फूस पर नहीं बैठते।"

इकबाल जल्दी से उठ खड़ा हुआ और सुरैया उसे लेकर कोठी के भीतर वापस चली गई।

३

कई सप्ताह बीत गये ।

एक दिन की घटना है कि सुरैया सिंगार-मेज के सामने खड़ी थी । उसने एक खूबसूरत ड्रैसिंग गाऊन पहन रखा था । दो सेविकायें दायें-बायें खड़ी उसके बाल सँवार रही थीं । उसने शीशे में अपना निखार देखा । इस वक्त वह बहुत खुश नजर आ रही थी । इतने में एक नौकरानी उपस्थित हुई । सुरैया ने आँख उठाकर प्रश्नवाचक दृष्टि से उसकी ओर देखा । वह शिष्टता से बोली—

"महफिल तैयार है ।"

सुरैया अपने कमरे से निकली और सीधी इकबाल के कमरे में पहुँची । वह एक कम्बल ओढ़े कुरसी पर बैठा पढ़ रहा था । उसने सुरैया को आते हुए नहीं देखा । वह पूर्व की नाईं पढ़ने में व्यस्त रहा । वह कमर पर शान से हाथ रखकर खड़ी हो गई । कुछ देर तक इकबाल को घूरती रही । फिर उसके पास पहुँचकर बोली—

"हम खड़े हैं और तुम बैठे हो । आखिर तुम्हें तमीज कब आयेगी ?"

इकबाल जल्दी से खड़ा होगया । उसने क्षमा-याचना करते हुए कहा—

"मैंने आपको देखा न था ।"

वह उसी शान से बोली—

"क्यों नहीं देखा ?"

"ग़लती हो गई । माफ फरमाइये ।"

"हमने तुम्हें माफ किया। लेकिन आइन्दा ऐसी बेअदबी न हो।"

"बहुत खूब।"

"आओ, हमारे साथ आओ।"

"जी ?"

"हमारे साथ आओ--हर चाँदनी रात को हम अपने बागीचे में बैठकर परियों का नाच देखते हैं।"

"परियों का नाच !" इकबाल को आश्चर्य हुआ। उसने कहा—

"परियों का नाच दिखायेंगी आप ?"

"हाँ, हाँ, चलो ; उठो जल्दी करो।"

इकबाल सुरैया के साथ हो लिया। वह दिल में बहुत खुश था कि आज परियों का नाच देखेगा। जाते-जाते सुरैया खटकी। उसने इकबाल पर एक नजर डाली और कहा—

"इन मैले-कुचैले कपड़ों में चलोगे ?"

इकबाल ने बेचारगी के साथ अपने मैले कपड़ों पर एक नजर डाली और फिर सुरैया के बहुमूल्य कपड़ों को देखा तथा वितृष्णा से भरकर कहा—

"जी ! मेरे पास तो यही हैं।"

नवाब साहब ने आते ही इकबाल के लिये नये कपड़े सिलवाने को बेगम साहिबा से कहा था। चार-पाँच जोड़े सिलकर आज ही आये थे। उनमें से एक सुरैया अपने सा ले आई थी। उसने इकबाल से कहा—

"लेकिन हमारे पास सब कुछ है। तुम अभी आदमी बन जाते हो।"

फिर उसने मुलाजिमा से एक मलिका की शान में कहा—

"तामील हो।"

वह मुलाजिमा इकबाल को लेकर दूसरे कमरे में चली गई। थोड़ी देर में जरी की एक खूबसूरत शेरवानी, अच्छा सा चूड़ीदार पाजामा और एक जरी वाली टोपी पहनाकर बाहर लायी। अब वह वाक़यी नवाबजादा मालूम हो रहा था। सामने शीशा था। उसमें उसे अपनी तस्वीर

नजर आई। इस हुलिये में अपना निखरा हुआ रंग देखकर वह स्वयं चकित हो गया। सुरैया बिल्कुल पास खड़ी थी। वह मुस्कराई और बोली—

"अब कैसे लगते हो ?"

इकबाल मुस्कराया—

"आदमी।"

सुरैया ने कहा—

"हाँ और क्या। और ये चिथड़े ! इन्हें जला डालो।"

इकबाल ने एक नजर अपने पुराने और मैले कपड़ों पर डाली और कहा—

"ये मेरे दुख-दर्द के पुराने साथी हैं। इन्हें मैं जला नहीं सकता।"

सुरैया को इकबाल की इस हरकत पर बड़ा क्रोध आया। उसके मुँह से सहसा निकल गया—

"जंगली।"

और वह क्रुद्धावस्था में कमरे से निकली चली गई। इकबाल हक्का-बक्का उसे देखता रह गया। यहाँ से निकलकर सुरैया अपनी सजी-सजाई महफिल में पहुँची। वह सिंहासन पर आधा लेटकर आराम करने लगी। उसकी छोटी-छोटी, नन्हीं-नन्हीं सहेलियाँ बड़ी आन-बान और सज-धज से गाना सुना रही थीं और नाच दिखा रही थीं।

इकबाल पूर्व की भाँति उदास और परेशान अपने कमरे में खड़ा था। सुरैया के शब्दों ने उसके मन की दुनिया नष्ट-भ्रष्ट कर दी थी। ये शब्द तीर की तरह लगे थे जाकर उसके नन्हें से दिल में। लेकिन वह बेवस था। कोई जवाब नहीं दे सकता था। अपने कमरे में पहुँचकर उसने फिर वही पुराना और जीर्ण-शीर्ण लिवास पहन लिया और वह कीमती लिवास एक खूँटी पर लटका दिया। वह शीशे के सामने खड़ा था और दिल ही दिल में कह रहा था—

"यतीम की किस्मत इतनी बुलन्द नहीं होती कि वह किसी नवाब के महल में खप सके।"

उसने फैसला कर लिया कि वह महलसरा—कोठी—से चला जायेगा। मेज पर बैठकर एक कागज पर चन्द पंक्तियाँ लिखने लगा। यह नवाब साहब के नाम अन्तिम सन्देश था। सुरैया नृत्य की मनोरम महफिल समाप्त करके अपने कमरे की ओर जा रही थी कि इकबाल के कमरे के सामने से उसका गुजर हुआ। वह दो-चार कदम आगे निकल गई, रुकी, घूमकर देखा और फिर चलकर कमरे के समीप आ गई। फिर कुछ और ख्याल आया। और मुँह बिगाड़कर अपने कमरे की ओर चल दी। लेकिन कुछ सोचकर फिर वापस मुड़ी। इतने में ही इकबाल अपना अन्तिम सन्देश समाप्त करके और उसे मेज पर छोड़कर कमरे से बाहर निकला। दरवाजे पर सुरैया खड़ी उसे तक रही थी। इकबाल नजरें झुकाये उसके पास से गुजर गया। सुरैया ने पुकारा—

"इकबाल !"

वह जाते-जाते रुक गया। सुरैया उसके समीप आई। बड़े ग़रूर से बोली—

"जा रहे हो ?"

"जी, यही इरादा है।"

"तो जाओ।"

और वह तेजी से कदम बढ़ाती हुई अपने कमरे की तरफ चली गई।

इकबाल अन्यमनस्क ड्योढ़ी की ओर गया। यहाँ नवाब साहब से दो-चार हुआ। वह बाहर से अन्दर आ रहे थे। उन्होंने इकबाल की निराश तथा उदास दशा को देखकर अनुमान लगा लिया कि जरूर सुरैया से लड़ाई हुई है। वह इकबाल के समीप आये और स्नेह के साथ पूछा—

"कहाँ जा रहे हो बेटा ?"

इकबाल ने नजरें झुकाकर धीरे से उत्तर दिया—

"वापस जा रहा हूँ।"

"मालूम होता है तुम्हारा सुरैया से झगड़ा हो गया कुछ; क्यों यही बात है ना ?"

इकबाल ने समर्थन में गरदन हिला दी। नवाब साहब ने कहा—

"मगर भई इसमें हमारा क्या क़सूर है ? हम से क्यों रूठ गये तुम ?"

इकबाल की आँखों में आँसू झिलमिलाने लगे। लेकिन उसने जवाब नहीं दिया। खामोश खड़ा रहा। नवाब साहब ने कहा—

"आओ हमारे साथ, हम सुरैया को समझा देंगे।"

इकबाल नवाब साहब के साथ-साथ अन्दर चला गया। वह सीधे सुरैया के कमरे में पहुँचे और उससे पूछा—

"इकबाल क्यों वापस जा रहा है ? क्या तुम लड़ पड़ीं इससे ?"

वह आँखों में आँसू लिये हुए भोला सा मुँह बनाये बोली—

"आप मुझसे क्यों पूछते हैं ? इन्हीं से पूछ लीजिये।"

"क्या पूछ लूँ ?"

"कसूर मेरा है या इनका।"

"तुम ही बताओ न कुछ ?"

"यह लीजिये इनका रुक्का।"

सुरैया, इकबाल के कमरे से वह पर्चा ले आई थी जो उसने जाते-जाते नवाब साहब के नाम लिखा था। नवाब साहब ने इकबाल का पर्चा पढ़ा। वह चुपचाप गरदन झुकाये खड़ा था। उन्हें विश्वास हो चुका था कि इकबाल बेकसूर है। सारी शरारत सुरैया की है। उन्होंने बड़े प्यार से सुरैया से कहा—

"बेटी, हर एक से नहीं झगड़ा करते।"

सुरैया रूठी हुई बोली—

"मैं कहाँ झगड़ती हूँ, अब्बा हजूर।"

"फिर यह अभी क्या हुआ था ? इकबाल क्यों जा रहा था ?"

"मैं झगड़ी थी या यह ? आप भी इन्हीं का साथ देंगे।"

सुरैया रोने लगी। नवाब साहब ने उसे गोद में उठाकर प्यार किया और कहा—

"बेटी, नासमझी की बातें नहीं किया करते। जो यतीमों से झगड़ा करता है; अल्ला मियाँ उससे ख़फ़ा हो जाते हैं; हाँ।"

सुरैया सहम गई। वह बड़ी भोली मुद्रा में आकाश की ओर देखकर, मानो अल्ला मियाँ से सम्बोधित होकर बोली—

"अब नहीं करूँगी यह कसूर।"

नवाब साहब ने उसे गले से लगाकर फिर प्यार किया और कहा—

'शाबाश !"

फिर वह इक़बाल से सम्बोधित हुए—

"क्यों बेटे' अब तो नहीं जाओगे ?"

वह शिष्टता से बोला—

"जी नहीं।"

"अब तुम सुरैया से नाराज तो नहीं हो ?"

उसने मुस्कराते हुए कहा—

"जी नहीं।"

"अब तो इसने अपने कसूर की माफी भी माँग ली।"

इकबाल ने कहा—

"सच पूछिये तो कसूर मेरा था, माफी मुझे माँगनी चाहिए थी।"

नवाब साहब ने सुरैया की तरफ देखकर मुस्कराते हुए कहा—

"दोनों माफी माँग रहे हैं, और दोनों कसूरवार नहीं हैं। क्यों बेटी, माफ कर दिया तुमने इकबाल को ?"

वह इठलाकर बोली—

"कर दिया।"

नवाब साहब ने इकबाल को भी अपनी गोद में लेकर प्यार किया और दोनों से कहा—

"शाबाश ! अब न लड़ना कभी।"

सुरैया ने कहा—

"लेकिन इनसे कह दीजिये, मेरा कहना मान लिया करें; हुज्जत न

किया करें।"

नवाब साहब हँसते हुए अपने कमरे में चले गये। और ये दोनों बच्चे घुल-मिलकर बातें करने लगे जैसे कुछ हुआ ही नहीं था।

४

जमाना करवटें बदलता रहा। मौसम बदलते रहे। परिवर्तन आते रहे। सुरैया अब एक नन्हीं सी लड़की नहीं बल्कि ललितांगी थी। एक महकता हुआ फूल जिसमें से जवानी और जिन्दगी फूट रही थी। उसके सौंदर्य में अब नुकीलापन आ गया था। उसकी आँखों में अब यौवन मचल रहा था। उसके चेहरे पर अब दृष्टि नहीं टिकती थी। उसके पास बैठने से दिल धड़कने लगता था। उसकी बातें सुनने से दिल की दुनिया में हलचल मच जाती थी। वह जिस ओर दृष्टिपात कर देती उधर ही कोमलता, सुन्दरता, यौवन तथा मादकता एवं जीवन की तरंगें उठने लगती थीं और यही हाल इकबाल का भी था। अब वह यतीमखाने से आया एक उदास छोकरा नहीं था। यौवन तथा सौन्दर्य की सजीव प्रतिमा, हृष्ट-पुष्ट, खूबसूरत, मनमोहक तथा पैने नयन-नक्श वाला, विशाल कद आदमी था। उसकी बातों में रस था। उसके व्यक्तित्व में आकर्षण था। वह बातें करता तो जी चाहता कि सुने जाइये। वह पास बैठता तो जी चाहता, यह कभी न उठे, यों ही बैठा रहे; यों ही बातें करता रहे। नवाब साहब और बेगम साहिबा पर समय का यथेष्ट प्रभाव पड़ चुका था। उनकी जवानी बीत चुकी थी और वृद्धावस्था का प्रारम्भ हो चुका था।

आज नवाब साहब के यहाँ दुहरी खुशी का अवसर था। इकबाल ने डाक्टरी की परीक्षा में अद्वितीय सफलता प्राप्त की थी। और सुरैया ने आयु की सत्रहवीं मंजिल में कदम रखा था। उसकी वर्षगाँठ का समारोह

4930

बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा था। नवाब साहब ने घर में बेटी की सालगिरह पर चिरायु होने का आशीर्वाद दिया। बाहर आये तो इकबाल अपनी डिग्री लिए मौजूद था। नवाब साहब ने उसकी सफलता पर अपनी हार्दिक प्रसन्नता को अभिव्यक्त किया तथा आशा प्रकट की कि वह जनता की सेवा करके इनका और अपना नाम रोशन करेगा। एक विस्तृत क्षेत्र ईश्वर ने जनता की सेवा-हेतु उसे प्रदान किया है।

इकबाल ने नम्रता के साथ कहा—

"इस बड़ी दुनिया में मेरा कोई न था। आपने मुझे पनाह दी। आपने मुझे सहारा दिया। आपने मुझे खाक से उठाकर आसमान पर पहुँचा दिया। किस जबान से आपका शुक्रिया अदा करूँ।"

नवाब साहब ने प्यार से उसके कन्धे पर हाथ रखा और कहा—

"बेटा इकबाल ! यों न कहो। यों समझो कि मेरा घर तारीक था, तुमने आकर रोशन किया। तुमने आकर इसे खुशी की दौलत दी, बुढ़ापे के सहारे से वंचित था ; तुम मेरे बुढ़ापे का सहारा बन गये। तुम्हें मैं अपनी औलाद की तरह चाहता हूँ। तुममें और सुरैया में कोई फर्क नहीं करता। मेरी दुआ है कि तुम चाँद और सूरज बनकर, मेरे इस वीरान और सुनसान घर में हमेशा चमकते और जगमगाते रहो।"

इकबाल सर झुकाये हुए नवाब साहब के दिल से निकली बातें सुन रहा था और उसका मन अपने इस संरक्षक के प्यार और मुहब्बत से भरा हुआ था। नवाब साहब ने कहा—

"बेटे ! आज सुरैया की सालगिरह है।"

"जी, मुझे मालूम है।"

"माशा अल्ला ; अब वह सत्रहवें साल में कदम रख रही है।"

"खुदा आपको ऐसी बहुत सी खुशियाँ देखना नसीब करे।"

"आज उसकी तमाम सहेलियाँ आयेंगी। घर में बहुत से महमान आयेंगे। मेरे दोस्त, बेगम की मिलने वालियाँ, सारा इन्तजाम तुम्हारे ही सुपुर्द है। ख्याल रखना, किसी को कोई तकलीफ न होने पाये।"

"बहुत खूब; ऐसा ही होगा।"

नवाब साहब अपनी मरदानी बैठक में जाकर शतरंज खेलने लगे और इकबाल सालगिरह के आयोजन में व्यस्त हो गया। नवाब साहब की तबियत में सादगी थी और बेगम साहिबा वैभव के प्रदर्शन में रुचि रखती थीं। वह कहते थे यह समारोह सादगी से सम्पन्न होगा। वह मचली हुई थीं—

"मेरी इकलौती लड़की है। मैं तो अपने दिल का हर अरमान निकालूँगी।" इकबाल दत्तचित होकर आयोजन को सफल बनाने में रत था।

बाहर मैदान में बहुत सी आतिशबाजियाँ और हवाइयाँ छूट रही थीं और इस आयोजन को चार चाँद लगा रही थीं। नवाब साहब और बेगम साहिबा दरीचे में खड़े यह मनोहर दृश्य देख रहे थे। वे दोनों असीम प्रसन्न थे। इस वक्त नवाब साहब भी तरंग में थे। उन्होंने बेगम साहिबा से कहा—

"बेगम!"

वह सम्बोन्धित हुईं—

"कुछ मुझसे कह रहे थे आप?"

"हाँ; तुम्हीं से कह रहा था।"

वह बोलीं—

"कहिये! चुप क्यों हो गये?"

नवाब साहब ने कहा—

"कुछ याद है?"

"क्या याद आ रहा है आपको?"

"कभी हम भी तुम भी थे आशना, तुम्हें याद हो के न याद हो।"

बेगम साहिबा का चेहरा सुर्ख हो गया। वह मुस्करा दीं। उन्होंने कहा—

"क्या मतलब? बूढ़े मुँह मुँहासे, लोग चले तमाशे।"

"यह बात नहीं है बेगम।"

"फिर क्या है, कुछ कहिए भी ? "

"मुझे गुजरा हुआ जमाना याद आ गया ।"

—"आता है याद जिस दम गुजरा हुआ जमाना"—

"ऐ, हे ; कौनसी बात याद आ गई आज ? याद आ गई होगी वही मोई चौक की नायिका—दुलारी जान, जिसके लिये खुदकशी किये लेते थे । और क्या याद आया होगा, लो मेरा मुँह न खुलवाओ ।"

नवाब साहब ने एक कहकहा लगाया—

"ये तो शादी से पहले की बातें हैं बेगम ।"

"ऐहे ; शादी के बाद कौनसे वली अल्ला बन गये थे । मैं सब जानती हूँ ।"

"बेगम तुमने तो बिगड़ कर, और ज्यादा मुझे वह पुराना जमाना याद दिला दिया ।"

"खुदा की शान ; कौनसा पुराना जमाना ?"

"वह जमाना; जब तुम पहले-पहल इस घर में दुलहन बनकर आयी थीं । जब मैंने तुम्हारा डोला उतारा था । जब दिन-दिन भर तुम नाज उठवाती थीं । और रात-रात भर खुशामदें करवाती थीं ।"

बेगम साहिबा का गुस्सा उतर गया । वह मुस्करायीं । शायद पुराना जमाना उन्हें भी याद आ रहा था । बड़े चाव से कहने लगीं एक ठंडी साँस लेकर—

"दिन इसी तरह बीतते रहते हैं । जवानी दबे पाँव चली जाती है । बुढ़ापा बेकहे नमूदार हो जाता है ।"

नवाब साहब ने मादक-दृष्टि से बेगम की तरफ देखते हुए कहा—

"लेकिन तुम्हें बूढ़ा कौन कहता है ? तुम पर जवानी आज भी फटी पड़ रही है । मेरी तरफ देखो ; मुझे देखो ।"

बेगम फिर भड़कीं—

"यह आज तुम्हें हुआ क्या है ?"

"बीते हुए दिन याद आते हैं तो दिल में चुटकियाँ लेने लगता है,

कोई।"

"कुछ भी नहीं, तुम्हें बड़भुस सवार है। यहीं खड़े रहोगे या बाहर भी जाओगे। महमानों का ताँता लगा हुआ है। खुद भी यहीं खड़े हो और मुझे भी रोके हुए हो। मैं तो जाती हूँ।"

"जाओ, लेकिन भूल न जाना।"

वह जाते-जाते रुकीं—

"ए वाह! क्या न भूलूँ? तुम्हारा मतलब क्या है आखिर?"

"एँ; यह बेमुरव्वती!"

वह मुस्कराती हुई जनानखाने में चली गईं और नवाब साहब अपनी मरदाना बैठक में चले गये, जहाँ दोस्तों और परिचितों की भीड़ थी।

दायें बाग में सुरैया की सखियों और सहेलियों ने एक कवि-सम्मेलन का आयोजन किया था। इस समूह में ज़ुबैदा भी मौजूद थी। सुरैया की मौसी की लड़का, बड़ी शोख़ और चंचल, बोटी-बोटी फड़कती थी इस लड़की की। सुरैया पर भी ऐसी चोटें करती थी कि जवाब देते नहीं बन पड़ता था। उसके आगमन ने गोष्ठी में गर्मागर्मी और दिलचस्पी को बढ़ा दिया था। आज के कवि-सम्मेलन की विशेषता यह थी कि सब लड़कियाँ गज़ल सुनाने पर मजबूर थीं। हर लड़की के लिये शर्त थी कि वह किसी प्रसिद्ध कवि की रचना उसके अपने स्वर में सुनाए। अतएव इन लड़कियों ने विभिन्न कवियों का रूप भर कर, उन्हीं की तर्ज और लय में रचनाएँ पढ़ने का कार्यक्रम बनाया था।

आखिर ज़ुबैदा की देख-रेख में कवि-गोष्ठी का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। इस गोष्ठी ने वाकयी एक अद्भुत वातावरण की सृष्टि कर दी। सुरैया एक मसनद पर बैठी थी गोया वह कवि-गोष्ठी की अध्यक्षा हो। उसकी सखियाँ बारी-बारी से शम्मा आगे रखकर गजल सुना रही थीं। उनमें कोई अख्तर शीरानी थी, कोई जिगर-मुरादाबादी, कोई शीमाब अकबर आबादी थी और कोई हफीज जालंधरी। जोश मलीह आबादी

बनना मुश्किल था। लेकिन जब जोश मलीहृ आबादी के रंग में जुबैदा ने बिल्कुल उन्हीं की तरह रुबाइयाँ पढ़ना शुरू कीं तो सारी महफिल पर एक सन्नाटा छा गया। लड़कियाँ हँसते-हँसते बेहाल हो गईं। बड़ी देर तक यह कवि-गोष्ठी जारी रही।

अन्दर का सारा काम जुबैदा ने बड़ी निपुणता से सँभाल लिया था। बाहर के कामों की जिम्मेदारी इकबाल पर थी। वह सुसंस्कृत ढंग से अपने उत्तरदायित्व को निभा रहा था। यहाँ भी धूम-धड़क्के की कोई कमी न थी। बेगम साहिबा ने दुलारी जान का जिक्र करके नवाब साहब को वाकयी पुरानी बातें याद दिला दी थीं। उन्होंने सोचा और तो कुछ कर नहीं सकते। लाओ नाच-गाने का ही आयोजन कर डालें। अतएव मर-दाने में नाच-गाने की महफिल जम गई।

इकबाल किसी काम से अन्दर अपने कमरे में गया। यह कमरा जरा अलग-थलग सा था। रास्ते में उसकी सुरैया से मुठभेड़ हो गई। वह फूलों और गजरों में लदी, सुगन्ध में बसी, बरामदे की तरफ आती दिखाई दी। इकबाल सामने आ गया। उसने सुरैया को सम्बोधित करके कहा—

"इस मुबारिक मौके पर मेरी तरफ से दिली मुबारिकबाद कबूल फरमाइये।"

सुरैया जाते-जाते मुस्कराई और खनककर खड़ी हो गई। उसने कहा—

"बस, यह खाली-खोली मुबारिकबाद है ?"

एक विशिष्ट भावमयी स्थिति के अन्तर्गत उसने कहा—

"मैं दिल से निकली हुई दुआ दे सकता हूँ। आपकी शान के मुताबिक कोई तोफा नहीं दे सकता।"

"क्यों ?"

"मैं फकीरजादा, आप नवाबजादी।"

"तो इससे क्या होता है ?"

"क्यों नहीं होता; हीरे की कद्र जौहरी···"

"यह न कहिये। अब्बा हजूर या अम्मीजान ने ये बातें सुन लीं तो उन्हें बहुत सदमा होगा।"

"किस बात का ?"

"आपको शायद मालूम नहीं। ये दोनों आपको कितना चाहते हैं ?"

"जानता हूँ—खूब जानता हूँ। मेरे जिस्म का रुआँ-रुआँ जानता और मानता है।"

"फिर आपने यह बात क्यों कही ? वे मुझमें और आपमें कोई फर्क नहीं करते।"

"ठीक है सुरैया।"

"अगर वह फकीर हैं, तो आप भी फकीर हैं; वह नवाब हैं तो आप भी नवाब हैं।"

"वाकयी नवाब साहब मुझे औलाद की तरह चाहते हैं लेकिन…"

सुरैया ने बात काटकर चंचल स्वर में कहा—

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, मानिये आपने गलती की।"

"मानता हूँ।"

"वायदा कीजिये, आप ऐसी गलती नहीं करेंगे।"

"वायदा करता हूँ।"

"वायदा कीजिए, अब ऐसा ख्याल भी आपके दिल में नहीं आयेगा।"

"सच्चे दिल से वायदा करता हूँ।"

"आज के दिन मेरी सखियों और सहेलियों ने, रिश्तेदार औरतों ने, अम्मीजान की दोस्तों ने, अब्बा हजूर के दोस्तों की बीवियों ने मुझे हजारों रुपयों के कीमती तोफे दिये हैं।"

"जरूर दिये होंगे।"

"लेकिन आपको एक बात बताऊँ ?"

"जरूर बताओ।"

"मुझे किसी बड़े से बड़े और अच्छे से अच्छे तोफे से इतनी खुशी नहीं हुई जितनी आपके सादे और सच्चे अल्फाज से—इन कीमती और,

चमकदार तोफों में नुमायश थी, बड़प्पन का जज्बा था, तल्ब और तकाज़ा था; लेकिन आपके इन बेग़र्ज और सच्चे बोलों में सिर्फ सच्चाई थी और मेरे नजदीक इससे बढ़कर किसी की कीमत नहीं है।"

इकबाल ने कृपाभरी नजरों से सुरैया को देखा और कहा—

"दौलत की गोद में पलने के बाद भी आपके ये अल्फाज़ सुनकर मैं कह सकता हूँ कि मेरी खुशी का क्या आलम है?"

सुरैया ने पैनी मुस्कान के साथ कहा—

"और आपने मुझे कोई माली तोफा नहीं दिया, तो उदास क्यों हैं? आप नहीं जानते, आप खुद भी तो एक तोफा हैं।"

यह तीव्र कटाक्ष सुनकर इकबाल चौंक पड़ा। सुरैया ने अपने शब्दों का महत्त्व समझकर कहा—

"सच!—अब्बा हजूर अकसर कहा करते हैं।"

"क्या कहते हैं?"

"कहते हैं, इकबाल एक बड़ा अच्छा तोफा है, जो कुदरत ने हमें दिया है। यकीन न हो तो पूछ लीजियेगा उनसे।"

"यह उनकी मुहब्बत और नवाज़िश है। इसी मुहब्बत और नवाज़िश ने मेरी रगों में जिन्दगी का खून दौड़ाया है।"

इकबाल की इच्छा चलने को हो रही थी कि सुरैया ने कहा—

"आपकी कामयाबी पर मैं कोई तोफा पेश करूँ तो?"

इकबाल फिर चौंका—

"जी!"

"तो आपको कोई ऐतराज तो न होगा?"

इससे पूर्व कि इकबाल कोई जवाब दे, सुरैया ने बढ़कर, उसकी उँगली में एक कीमती अँगूठी पहना दी तथा बहार के झोंके की तरह चली गई। इकबाल हक्का-बक्का अपनी जगह खड़ा रहा।

५

सुरैया इकबाल का बहुत लिहाज करती थी। उसकी सेवा आदि में कोई कसर न उठा रखती थी। उसे उदास देखती तो स्वयं परेशान हो जाती। उसे प्रसन्न देखती तो स्वयं भी हर्षातिरेक से विभोर हो जाती लेकिन रख-रखाओं के साथ, वह इकबाल के साथ बेतकल्लुफ नहीं थी; हालाँकि उसका ध्यान बहुत रखती थी। यही स्थिति इकबाल की थी। वह भी सुरैया का बहुत मान रखता था। उसका असीम सम्मान करता था। उसके इशारों पर चलता था; लेकिन क्या मजाल कि सम्मान की सीमा का उल्लंघन कर जाये। वह इस तथ्य को कभी भी नजरों से ओझल न होने देता था कि वह इस घर के नमक पर पला है। नवाब साहब की उस पर यथेष्ट कृपाएँ हैं जिनका प्रतिकार वह अपनी जान कुरबान करके भी नहीं कर सकता। और सुरैया उनकी बेटी है, जो उसका संरक्षक और पालक है।

इकबाल हॉकी का बड़ा अच्छा खिलाड़ी था। आज कॉलेज में ही से एक मैच में शामिल होने चला गया। शाम की चाय अधिकतर सुरैया और इकबाल साथ-साथ पीते थे। काफी देर हो गई। वह अभी तक नहीं आया था। सुरैया यही सोच रही थी। इस समय वह अपने कमरे की उस खिड़की के समीप खड़ी थी जहाँ से बाहर का रास्ता स्पष्ट दिखाई देता था। लेकिन उस समय यह मार्ग सुनसान पड़ा हुआ था। बहुत से राही आ-जा रहे थे; लेकिन वह जिसकी प्रतीक्षा में थी उसका पता न था। इस मध्य में नौकरानी आई। उसने एक छोटी सी मेज पर चाय की

'ट्रे' लाकर रख दी और खड़ी हो गई कि सुरैया आकर चाय पिये।

सुरैया ने कहा—

"हम पीलेंगे तुम जाओ।"

वह खामोशी से चली गई। सुरैया कभी कुर्सी पर बैठ जाती। कभी टहलने लगती। कभी खिड़की के समीप जाकर खड़ी हो जाती और मार्ग की ओर देखने लगती, जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रही हो। बड़ी देर हो गई। कुछ काल के बाद नौकरानी फिर आई। वह आश्चर्य से बोली—

"चाय तो ठंडी हो गयी।"

सुरैया ने क्रुद्ध-दृष्टि से उसे निहारा और कहा—

"फिर ?"

नौकरानी खामोश खड़ी हो गई। सुरैया ने कुछ देर के बाद कहा—

"वापस ले जाओ।"

मुलाजिमा ने प्रार्थना के स्वर में कहा—

"गरम कर लाऊँ ?"

वह कड़वे स्वर में बोली—

"नहीं।"

स्वामी-भक्ति के भाव से युक्त होकर उसने कहा—

"नयी चाय अभी बना लाती हूँ।"

"कोई जरूरत नहीं—ले जाओ; बक-बक न करो।"

उसने खामोशी से ट्रे उठा ली और चली। वह सोच रही थी कि क्या हो गया है साहबजादी को ? सुरैया फिर रास्ते को निहारने लगी। उसने देखा; इकबाल सायकिल पर आ रहा है। मुलाजिमा दरवाजे तक पहुँच चुकी थी। सुरैया ने आवाज दी—

"सुनती है ?"

वह पलट आई—

"जी सरकार !"

"चाय गरम करके ले आओ।"

वह आश्चर्य से उसे देखती चली गयी । वह सोच रही थी कि क्या हो गया है साहबजादी को ? घड़ी में कुछ, घड़ी में कुछ । पहले इनकी तबियत कितनी अच्छी थी । अब तो प्रतिदिन चिड़चिड़ी होती जा रही है । यह माजरा क्या है ? इतने में इकबाल आ गया । सुरैया पूर्ववत् अपने स्थान पर खड़ी रही । उसने कहा—

"कहाँ रह गये थे आज ?"

"आज हॉकी का मैच था; वहाँ चला गया था ।"

"खेले भी थे ?"

"जी हाँ ।"

"नतीजा क्या रहा ?"

"मेरी जीत ।"

वह जोर से हँसा । सुरैया भी मुस्करा दी । इतने में नौकरानी आई और चाय रखकर बाहर चली गई ।

इकबाल ने कहा—

"अरे ! आपने चाय अभी तक नहीं पी ?"

"जी नहीं ।"

"मुझे तो आज मैच की वजह से देर हो गई ।"

"मैं भी जुबैदा के साथ खाला के पास चली गई थी । अभी आकर बैठी थी कि आप आ गये । मुझे भी आज बहुत देर हो गई ।"

बात बन गई । दोनों साथ बैठकर चाय पीने लगे । सुरैया ने कहा—

"तो आप जीत गये ?"

इकबाल ने चाय का घूँट हलक से उतारते हुए कहा—

"जिन्दगी की किसी बाजी में आज तक हार तो हुई नहीं मुझे ।"

"ठीक कहते हैं आप । लेकिन हार को भी बुरा न समझना चाहिए ।"

इकबाल ने चकित होकर पूछा—

"क्या मतलब ?"

"कभी-कभी वह जीत से भी अच्छी रहती है।"

इकबाल फिर हँसने लगा । उसने कहा—

"बिल्कुल यही बात आज की हारी हुई टीम के कप्तान ने भी कही थी ।"

"और आप हँस दिये थे ?"

इकबाल झेंप गया ।

और वह उठ खड़े हुए ।

६

सुरैया अपने प्रति बहुत लिये-दिये रहती थी। उसने इकबाल के सामने कभी कोई ऐसी बात नहीं की जिससे यह मालूम हो कि वह उससे प्यार करती है तथा इकबाल तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि वह चाहा जा सकता है। वह उसकी मनुहार करता था—एक सेवक और शुभचिन्तक की दृष्टि से। वह उसकी पूजा करती थी, बिल्कुल अपरिचिता की नाईं, गैर बनकर। लेकिन चंचल जुबैदा सब कुछ समझती थी। वह बड़ी चंचल थी। हँस-हँसी में बहुत कुछ कह जाती थी। वह बड़ी बौद्धिक थी। बातों-बातों में संकेत करती रहती थी।

एक दिन सुरैया अपने कमरे में बैठी रूमाल काढ़ रही थी। उस समय वह बहुत प्रसन्न थी। धीरे-धीरे कुछ गुनगुना रही थी। इतने में जुबैदा आई। सुरैया ने वह रूमाल छुपा लिया। जुबैदा जमकर बैठ गई।

"मैं आपके मशागल में हारिज तो नहीं हुई नवाबजादी साहिबा ?"

सुरैया ने मुस्कराते हुए कहा—

"ज्यादा न इठलाया करो।"

"क्यों ? नाराज हो कुछ ?"

"हाँ बहुत।"

"ए मैं कुरबान, वजह—सबब ?"

सुरैया मुस्करायी। जुबैदा खिलखिलाकर हँस पड़ी। सुरैया ने कहा—

"तुम यहीं बैठो, मैं अभी आई।"

"कहाँ चलीं···?"

" हीं नहीं, अभी आई।'

"और न आई तो ?"

सुरैया जवाब दिए बगैर चली गई। और सीधी तीर की तरह इकबाल के कमरे में पहुँची। वह उस समय कहीं बाहर जा रहा था। सुरैया को देखकर ठिठका। सुरैया ने पूछा—

"कहाँ जा रहे हैं आप ?"

"जरा यूँ ही बाहर तक।"

"आपको कढ़े हुए रूमाल पसन्द हैं ?"

"जी मुझे ?"

"हाँ आपको !—कल आप जुबैदा से कह तो रहे थे।"

इकबाल ने बड़ी मासूमियत के साथ कहा—

"उन्होंने पूछा, मैंने कह दिया।"

"अच्छा कह दिया। मैं कब ऐतराज करती हूँ। यह लीजिये।"

सुरैया ने अत्यन्त सुन्दर दो रूमाल इकबाल की ओर बढ़ाये। इकबाल ने जरा रुकते हुए कहा—

"यह रूमाल !"

"हाँ, हाँ, तो क्या हुआ ? हाथ बढ़ाइये ; कबूल कर लीजिये।"

इकबाल ने हाथ बढ़ाकर दोनों रूमाल ले लिये। दरवाजे से दो तेज और चंचल आँखें दोनों की निगरानी कर रही थीं। यह जुबैदा थी। इकबाल ने उलट-पुलटकर रूमालों को देखा। बहुत अच्छे बुने थे। उसने कहा—

"बहुत अच्छे कढ़े हुए हैं।"

"पसन्द आये आपको ?"

"जी हाँ, बहुत।"

"तो रख लीजिये।"

इकबाल ने तनिक झिझकते हुए उन्हें रख लिया। फिर पूछा—

"ये आपने काढ़े हैं ?"

"जी नहीं हमारे पड़ोस में एक गरीब सैय्यदानी रहती हैं। बड़ी नेक,

खुददार और शरीफ ; वह इसी तरह अपना गुजारा करती हैं। सिलाई और कढ़ाई करके वही लायी थीं। मैंने ले लिये। सोचा, इनका भला हो जायेगा। आपकी खुशी पूरी हो जायेगी। अब आप सोच क्या रहे हैं ? रख लीजिये। मैं उनसे कह दूँगी कि और भी बहुत से काढ़ लायें।"

इकबाल ने झिझकते हुए कहा—

"बस बहुत हैं।"

सुरैया बोली—

"आप मुझे नेक काम करने से मना करते हैं ?"

"नहीं तो।"

"कह तो रही हूँ ; बेचारी सैय्यदानी गरीब हैं, इसी पर उनकी रोजी का मदार है। मैंने सोचा है—जब तक वह लायेंगी; लेती रहूँगी।"

"लेकिन इतने सारे होंगे क्या ?"

"कुछ आप रख लीजियेगा, कुछ अम्मीजान को दे दूँगी। कुछ अब्बा हजूर को। जुबैदा भी नहीं मानेगी। दो-चार वह भी छीन-झपट लेगी।"

जुबैदा का नाम सुनकर इकबाल मुस्करा दिया। सुरैया ने पूछा—

"क्यों ; आप मुस्कराये क्यों ?"

"जुबैदा पर।"

सुरैया भी मुस्करा दी—

"हाँ बड़ी चंचल है, लेकिन बड़ी साफ दिल।"

वह मुस्कराता हुआ बोला।

"साफदिली का तजुर्बा आपको होगा, शरारत का मुझे है।"

"क्या हुआ ?"

"कल मैं टाई बाँध रहा था। इधर से गुजरीं। कहने लगीं ; हाय, हाय, आप खुदकशी क्यों किये लेते हैं ?"

सुरैया ने हँसते हुए कहा।

"हाँ, वह ऐसी ही है। आप बुरा न मान जाइयेगा।"

"नहीं ; मैं जानता हूँ।"

इकबाल बाहर चला गया। सुरैया अपने कमरे में आ गई। इससे पहले जुबैदा अपनी जगह पहुँच चुकी थी और अनजान बनी बैठी थी। मानों उसने सुरैया और इकबाल की बात नहीं सुनी। जुबैदा ने शिकायत के स्वर में कहा—

"हमें अकेला छोड़कर कहाँ गई थीं ?"

"कहीं नहीं ! जरा इकबाल के कमरे तक।"

"वहाँ क्या काम था ?"

"तुझे क्या ? तू अपना काम कर पगली।"

"ए; हाँ वह मेरा रूमाल क्या हुआ ?"

"कौनसा रूमाल ?"

"अब इतनी भोली बनती हो, वही जो कल लिया था।"

"मुझे नहीं याद।"

"मैं नहीं छोड़ने की। मेरा इत्ता अच्छा रूमाल, बड़ी आयी कहीं की।"

"एक नहीं दो दे दूँगी; अब तो हुई खुश।"

जुबैदा ने इठलाकर बच्चों की तरह कहा ?

"नहीं, मैं तो वही लूँगी।"

"वाहरी जिद्द; नहीं देते, जाओ करलो जो तुम्हारा जी चाहे।"

जुबैदा बोली—

"अच्छी जबरदस्ती हुई। पहले तो यह कह दिया कि बड़ा अच्छा कढ़ा है। मैं भी ऐसा काढ़ूँगी। फिर दे दूँगी। और अब यह धाँधली! मैं नहीं जानती। लाओ मेरा रूमाल; नहीं तो मैं कहती हूँ इकबाल से जाकर।"

"क्या कहोगी ?"

"कहूँगी; यह चोटी है—जरा होशियार रहना।"

"वह मेरा क्या कर लेंगे ?"

जुबैदा ने एक दम उछलकर कहा—

"ए हे ; यह तुम्हें क्या हुआ ?"

"कुछ भी नहीं ।"

"मेरी तोबा, तुम्हें नहीं, तुम्हारे दिल को ?"

"कुछ पागल हुई है ।"

"सच ! धक-धक कर रहा है । यहाँ तक आवाज आ रही है ।"

"बिल्लुक झूठ ।"

जुबैदा ने अपना कान उसके दिल पर लगाया और कहा—

"सुन लो कितने जोर से धक-धक कर रहा है ।"

"चल हट ।"

अत्यन्त स्थिरता से जुबैदा बोली—

"घबराओ नहीं, रोग का इलाज हो जायेगा । डाक्टर घर ही में है ।"

सुरैया झेंप सी गई । इतने में इकबाल इधर से गुजरता दिखाई दिया । जुबैदा ने आवाज दी—

"जरा सुनिये तो ।"

इकबाल अन्दर आ गया ।

"कुछ मुझसे कह रही थीं आप ?"

"जी हाँ ।"

"फरमाइये ।"

"तोबा मेरे अल्ला कहती हूँ, जरा साँस तो लेने दीजिये ।"

इकबाल खामोश हो गया । जुबैदा फिर बोली—

"मुसाफराना तौर पर क्यों खड़े हैं ? बैठ जाइये ; कुरसी में खटमल नहीं हैं ।"

सुरैया मुस्करा दी । इकबाल खिसयाना सा होकर एक कुरसी पर बैठ गया । जुबैदा ने घंटी बजाई । तुरन्त एक नौकरानी आ गई । उसने सुरैया से अधिक शाहाना ठाठ में आदेश दिया—

"चाय ।"

वह चाय लेने चली गई तो जुबैदा ने फिर इकबाल को शिकार का निशाना बनाया—

"अरे हाँ यह तो बताइये; आप सचमुच के डाक्टर हैं या यों ही ?"

"यों ही क्या, यों ही भी कोई डाक्टर हुआ करता है ?"

"आप मरीज को देखकर मर्ज पहचान लेते हैं ?"

"बेशक।"

"बताइये, मैं क्या बीमार हूँ ?"

"रातों को नींद नहीं आती।"

"हाल तो आपने ठीक बताया।"

"शुक्रिया !"

"लेकिन मेरा नहीं सुरैया का; रात को तो यह जागती हैं।"

सुरैया कुलबुलाकर खामोश हो गई। इकबाल ने जुबैदा को छेड़ते हुए कहा—

"तो आपका मतलब यह है कि यह बीमार हैं ?"

जुबैदा ने कहा—

"जी हाँ बीमार, दुश्मनों की किस्मत से बहुत बीमार—जब देखिये—उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते—!"

इकबाल ने बात काटकर कहा—

"कुछ आगे भी कहियेगा।"

जुबैदा ने बात पूरी की—

"इनका दिल धक-धक किया करता है।"

सुरैया ने जुबैदा को टोका।

"कुछ दिमाग चल गया है ?"

वह बोली—

"तुम तो चुपकी बैठी रहो, हमें हाल कहने दो। तो हाँ डाक्टर साहब, जरा इनका मुआयना कीजिये।"

इकबाल भी इस समय मजे में था। उसने मुस्कराते हुए कहा—

"बिला मुआयना किये मैं सब कुछ बता सकता हूँ।"

"बताइये।"

"नब्ज तेज चल रही है, मिजाज में कुछ गर्मी है।"

जुवैदा ने खुश होकर कहा—

"अब आये आप राह पर। बिल्कुल ठीक। आप गर्मी कहते हैं, मैं कहती हूँ—यह भस्म हुई जा रही है इसी आग में।"

इकबाल ने खोज का क्रम जारी रखा—

"आँखों से मालूम होता है कुछ खून की भी कमी है।"

जुवैदा ने कहा—

"कमी? खून है कहाँ; वह तो कब का सूख गया।"

इकबाल ने कहा—

"और जबान······"

जुवैदा ने फिर बात काटी—

"जबान देखकर गरीब की क्या कीजियेगा, जबान तो इसकी बन्द है। ताला पड़ा हुआ है इस पर। न सिर से खेले न मुँह से बोले मेरी बेजबान बहन!"

सुरैया ने इकबाल से कहा—

"यह जुवैदा तो है पागल, न जाने क्या अनाप-शनाप बका करती है। आप भी किसकी बातों में आ गये।"

इतने में नौकरानी चाय लेकर आ गई। जुवैदा ने ट्रे अपने सामने खिसकाई और चाय बनाने लगी।

७

मरदाना बैठक में नवाब साहब एक मुसाहिब से चौसर खेल रहे थे। आज वह निरन्तर हार रहे थे। कई बाज़ियाँ हारे तो झुँझलाकर बोले—

"आज जब तक तुम्हें हरा न लूँ; उठूँगा नहीं, चाहे एक सप्ताह गुजर जाये।"

इस घोषणा के बावजूद फिर वह हारे। मुसाहिब ने पूछा—

"क्यों हजूर और बिछेगी ?"

नवाब साहब ने फरमाया—

"जरूर बिछेगी। एक नहीं हजार।"

खेल फिर शुरू हो गया। और ऐन उस समय जब नवाब साहब के जीतने की स्थिति पैदा हो रही थी कि नौकर ने आकर कहा—

"अलाका से चौधरी अमजदअली तशरीफ लाये हैं।"

नवाब साहब अपने कार्य में व्यस्त रहे और फरमाया—

"आने दो।"

चौधरी अमजद नवाब साहब के चिरपरिचित और विश्वासपात्र मुलाजिम थे। देहाती इलाके की देखभाल और प्रबन्ध उन्हीं के जिम्मे था। उनकी ईमानदारी और सज्जनता पर नवाब को बहुत भरोसा था। सारा काम उन्हीं पर छोड़ रखा था। चौधरी अमजदअली अन्दर तशरीफ लाये और झुक-झुककर आदाब बजा लाये। इस समय उनके चेहरे से परेशानी और आतुरता प्रकट हो रही थी।

नवाब साहब ने नजर उठाकर उन्हें देखा। उनकी मनःस्थिति का

आभास कर लिया तथा स्नेह और सहानुभूति के स्वर में बोले—

"कहिये कैसे आना हुआ ? आप परेशान से क्यों नजर आते हैं ?"

चौधरी अमजद ने अपने को सँभालकर कहा—

"हजूर का इकबाल दूना हो, खिजर की उम्र पायें आप। जमालपुर में प्लेग फूट पड़ी है सरकार ! बूढ़े, जवान, मर्द, औरत, बच्चे सब मौत के घाट उतर रहे हैं। उतरते चले चले जा रहे हैं। मेरे हजूर ! रैयत बस्ती छोड़कर कब्रस्तान आबाद कर रही है। अगर रोकथाम न हुई तो उजड़ जायेगा सारा गाँव।"

नवाब साहब चौधरी की बातें सुनकर घबरा गये।

इकबाल भी अभी-अभी आकर बैठा था। उससे सम्बोधित होकर उन्होंने कहा—

"हालात की फौरी काट जरूरी है।"

इकहाल ने विनम्र स्वर में कहा—

"बेशक !"

"जल्द कोई इन्तजाम करो।"

"मैंने फैसला किया है कि मैं खुद जाऊँ।"

नवाब साहब चौंक पड़े—

"तुम ?"

"जी मैं।"

"तुम जमालपुर जाओगे ? इस भड़कती हुई आग में कूदोगे ?—यह नहीं हो सकता। मैं नहीं जाने दूँगा तुम्हें।"

इकबाल ने आज प्रथम बार नवाब साहब को जवाब दिया और निवेदन किया—

"जमालपुर में मौत का बाजार गर्म है। मैंने डाक्टरी इसलिये पढ़ी है कि जहाँ तक हो सके मरते हुओं को मौत से बचाऊँ। जानता हूँ आप मुझ खादिम को कितना अजीज रखते हैं। लेकिन अपनी गरीब और वफादार रिआया से कितना प्यार करते हैं आप, यह भी जानता हूँ।

इजाजत फरमाइये; मैं जाऊँगा। खुद बीमारों का इलाज करूँगा। इनकी तीमारदारी करूँगा।"

"लेकिन शहर में बहुत से डाक्टर हैं, हकीम है, वैद्य हैं—ये सब किस मर्ज की दवा हैं ?"

मुसाहिब ने कहा—

"हाँ मियाँ साहबजादे ! अपनी जान क्यों जोखों में डालते हो ? भेज दो—दो-चार डाक्टरों और हकीमों को।"

नवाब साहब ने कहा—

"मैं बड़ी से बड़ी फीस देने को तैयार हूँ। ज्यादा से ज्यादा रुपया खर्च करने पर आमादा हूँ।"

इकबाल ने कहा—

"बजा फरमाया ! लेकिन मैं जानता हूँ कोई डाक्टर वहाँ नहीं जायेगा। और अगर गया तो जी लगाकर काम नहीं करेगा—वह फीस के लालच से जायेगा। मैं खिदमत करना चाहता हूँ। मुझे खिदमत का मौका दीजिये। यह जज़्बा आपके जेर-साया रहकर मुझ में पैदा हुआ है।"

मुसाहिब ने फिर हस्तक्षेप किया—

"नहीं, बेटे नहीं।"

नवाब साहब की आवाज गूँजी—

"तुम जा सकते हो इकबाल ! मेरे दिल में तुम्हारी इज्जत और मुहब्बत पहले से बहुत ज्यादा बढ़ गई। जिन्दगी का सबसे बड़ा मकसद ही यही है कि दुखियारों के काम आया जाये। मुझे खुशी है कि मेरी तरबीयत बेनतीजा नहीं रही। तुमने अपनी जिन्दगी का मकसद पा लिया। शाबाश ! खुदा हाफिज।"

मुसाहिब ने कहा—

"इन्शाअल्ला ! क्या उम्र है, क्या बलवला है। खुदा कसम जी चाहता है कि मैं भी तुम्हारे साथ चल पडूँ। जाओ सिधारो ; खुदा तुम्हें कामयाब और खुशी-खुशी वापस लाये।"

इकबाल बाहर से उठकर अन्दर आ गया। रास्ते में जुवैदा और सुरैया मिलीं। उनकी मुद्राएँ बता रही थीं कि उन्हें मालूम हो चुका है। इकबाल इतनी खतरनाक मंजिल की ओर जा रहा है। दोनों साथ-साथ उसके कमरे तक आईं। वह सूटकेस में जल्दी-जल्दी सामान रखने लगा। सुरैया ने एक उदास मुस्कान के साथ कहा—

"आखिर सफर की ठान ली आपने ?"

"फर्ज का तकाजा यही है। मुझे जाना ही पड़ेगा।"

जुवैदा से भला क्यों खामोश रहा जाता ? वह बोली—

"बड़े आये हैं डाक्टर बनकर !"

इकबाल ने सर उठाकर उसे देखा और मुस्कराने लगा—

"क्यों शुबह है आपको मेरे डाक्टर होने में ?"

जुवैदा बोली—

"खैरात घर से शुरू होती है। पहले यहाँ अपने जौहर दिखाते फिर बाहर जाकर झंडे गाड़ते तो एक बात भी थी।"

"यहाँ कौन बीमार है ?"

वह चंचलताभरी गम्भीरता के साथ बोली—

"कोई नहीं—अभी कल ही बता चुकी हूँ। सुरैया को दिल का मर्ज है। बड़े डाक्टर हैं तो इनका इलाज कीजिये।"

इकबाल ने मुस्कराकर कहा—

"इनकी देखभाल के लिए आप काफी हैं।"

"हुँ आप काफी है—हालाँकि मसीहा खुद बने फिरते हैं।"

सुरैया ने जुवैदा को झिड़का—

"फिर वही बातें।"

"तो गलत कह रही हूँ कुछ ?"

"चुप रहो जुवैदा, हर वक्त मजाक अच्छा नहीं लगता।"

"मेरी मौजूदगी अगर खल रही है तो मैं जाती हूँ, यह चली।"

और वाकयी वह कमरे से निकली चली गई। सुरैया ने उसे रोका

नहीं। वह इस वक्त बहुत परेशान थी। लेकिन अपनी भावनाओं को नियन्त्रित करते हुए बोलना चाहा। शब्द मुँह से न निकले। उसकी आँखें रो रही थीं। उसका दिल रो रहा था। उसका रुआँ-रुआँ रो रहा था। लेकिन एक असाधारण सहनशीलता से काम लेकर वह अपने को छुपाये थी। अपने अन्तर्मन को स्पष्ट नहीं करने देती थी। इकबाल पूर्ववत् यात्रा सम्बन्धी सामान बाँध रहा था।

सुरैया ने कहा—

"जुबैदा ठीक तो कह रही थी।"

इकबाल ने सूटकेस पर हाथ रखे-रखे सुरैया की तरफ देखा और कहा—

"आप भी यही कह रही हैं ?"

"और क्या—खतरे में कूदना कौनसी अकलमन्दी है ?"

"लेकिन न कूदना बुजदिली है।"

"बुजदिली की इसमें क्या बात है ? एतयात करनी ही चाहिए।"

"ठीक है, एतयात का जहाँ तक ताल्लुक है; कोई कसर न उठा रखूँगा। लेकिन जब इन्सानियत मौत की हिचकियाँ ले रही हो; बूढ़े एड़ियाँ रगड़कर मर रहे हों; जवान सिसक-सिसककर जान दे रहे हों; बच्चे बिलख-बिलखकर माँ की गोद से जुदा हो रहे हों—मैं ऐश-व-आराम की जिन्दगी बसर करूँ। यह मुझसे नहीं हो सकता। ऐसी जिन्दगी से हजार बार मौत अच्छी।"

"मैं आपको रोकती नहीं। सच पूछिये तो मुझे आपका यह फैसला बहुत पसन्द आया। इन्सान वही है जो इन्सानियत के काम आये। बस, जरा यह ख्याल था कि वहाँ आग भड़क रही है। और आग जब भड़कती है तो किसी को नहीं देखती।"

"आपने बिल्कुल ठीक कहा। लेकिन खुदा भी तो कोई चीज है। मुझे तो उसी पर भरोसा है।"

इकबाल का थोड़ा सा यात्रा सम्बन्धी सामान तैयार हो चुका था। सुरैया ने कहा—

"जाइये, खुदाहाफिज !"

वह आगे बढ़ा। दरवाजे पर बेगम साहिबा मौजूद थीं। उन्होंने डब-डबाई हुई आँखों के साथ उसे गले से लगाया। आशीषें दीं और भर्राये हुए स्वर में कहा—

"जिस तरह पीठ दिखाकर जाते हो, उसी तरह खुदा मुँह दिखाना नसीब करे। खुदा तुम्हारा हामी और साथी हो।"

बाहर आया तो नवाब साहब स्वागत के लिये उपस्थित थे। उन्होंने भी आशीर्वाद देकर बिदा किया और कहा—

"मुझे उम्मीद है कि कामयाब होकर आओगे।"

इकबाल चौधरी असजदअली के साथ जमालपुर रवाना हो गया। ऊपर कोठे पर सुरैया अपने कमरे की खिड़की से इकबाल की रवानगी का यह दृश्य देख रही थी। जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गया, टकटकी लगाये वह उसकी ओर देखती रही। और जब वह नजरों की सीमा से दूर निकल गया तो आँखें काबू न कर सकीं। उबल पड़ीं। अब तक वह आहों की सिसकन को दबाने का प्रयास कर रही थी, लेकिन अब बेकाबू हो चुकी थी। थोड़ी देर के बाद उसने आँसू पूँछे और कमरे से बाहर निकल आई। आज यह घर कितना सुनसान और वीरान नजर आ रहा था !

जुबैदा, सुरैया की अवस्था को भली भाँति अनुभव कर रही थी। वह जान-बूझकर इस समय सुरैया के पास नहीं आई। उसने सोचा, सुरैया भावुक लड़की है। इकबाल के यों चले जाने पर उसे असाधारण पीड़ा का आभास हुआ है। इस समय न उसे हँसी-मजाक अच्छा लग सकता है; न मनुहार तथा मनबहलाव। उचित यही है कि थोड़ी देर उससे दूर रहा जाये। उसने मलिन मुख तथा अश्रुयुक्त दृष्टि के साथ सुरैया को कमरे से निकलते देखा। लेकिन कतरा गई। वह उसके जाने के बाद गुनगुनाने लगी—

फायदा क्या है, तुझे बज्म में जल जाने से।
शम्मा ने यह भी न पूछा कभी परवाने से॥

८

◇◇◇

चौधरी अमजदअली के साथ इकबाल जमालपुर पहुँचा और यहाँ की परिस्थिति देखकर चकित रह गया। इससे पूर्व वह अनेक बार यहाँ आ चुका था। कितना भरा-पूरा और शस्य-श्यामला था यह गाँव ! यहाँ के वासी कितने अच्छे थे ! यहाँ मौसम कितना सुहावना था ! यहाँ के बाग और बगीचे, नहर और दरिया कितने अच्छे थे ! लेकिन अब सब पर उदासी छायी हुई थी। लोगों के चेहरे उदास, घरों पर वीरानी और बरबादी के के चिह्न ; खेत खामोश और सुनसान। बच्चे चुप और गम्भीर, पशु करुणा का समूर्त रूप, न कोई रखवाली करने वाला था, न चारा डालने वाला, और न दूर चराई के लिये ले जाने वाला।

यह दशा देखकर इकबाल ने चौधरी साहब से कहा—

"यहाँ की तो दुनिया बदली हुई नजर आती है !"

"हाँ बेटे यही हाल है !—कौन घर है जहाँ से दो-एक लाशें न उठी हों ? कौन घर है, जहाँ दो-एक एड़ियाँ रगड़-रगड़कर मौत से जंग न कर रहे हों। मामूली बीमारी का इलाज तो गाँव वाले खुद कर लेते हैं। लेकिन प्लेग की गिल्टी देखकर सहम जाते हैं और निढाल होकर खुद को अल्ला के हवाले कर देते हैं ; क्या करें बेचारे ?"

"ठीक फ़रमाया आपने।"

"अब तुम आये हो तो उम्मीद बँधी है।"

"मैं कोई कमी न उठा रखूँगा। अपनी जान की बाजी लगा दूँगा।"

"खुदा तुम्हें सलामत रखें, जियो। कितने नेक और शरीफ हो तुम !"

इकबाल ने चौधरी साहब के साथ सबसे पहले तो पूरे गाँव का चक्कर लगाया, बीमारों को दिलासा दिया और मरने वालों के परिवारों को सान्त्वना दी। फिर उसने नवाब साहब की खूबसूरत और विशाल कोठी को—जहाँ वह कभी-कभी सैर तथा शिकार के लिये कुछ दिन आकर ठहरा करते थे—अपना हस्पताल बनाया। तमाम मरीजों को वहीं जमा कर लिया। बहुत सी दवाएँ और इन्जेक्शन-ट्यूब वह अपने साथ लाया था। मरीजों को उधर लाते ही उनकी सेवा-शुश्रूषा में व्यस्त हो गया। चौधरी साहब उसे अपने यहाँ ठहराना चाहते थे, लेकिन उसने यही मुनासिब समझा कि मरीजों से किसी समय भी दूर न रहे। अतएव अपने हस्पताल का एक कमरा उसने निवास-स्थान के रूप में प्रयुक्त करना प्रारम्भ कर लिया।

पहले चौबीस घण्टे इकबाल पर बड़े कठिन गुजरे। इसे पल भर के लिये आराम न मिला। आस्तीन चढ़ी हुई, बाल बिखरे हुए, पसीने में लथ-पथ, वह जन-सामान्य की सेवा में व्यस्त था। एक विशाल कक्ष में अनगिनत लोग पड़े थे। कोई चारपाई पर कोई बेंच पर, कोई जमीन पर; कोई बेहोश था, कोई कराह रहा था, किसी के अजीज रो रहे थे। इकबाल इन सबको सान्त्वना भी देता जाता था तथा अपना काम भी करता जाता था। इन्जेक्शनों की खाली नलकियों का ढेर उसके सामने लगा था। वह थककर चूर हो गया था। ये चौबीस घण्टे इस तरह गुजरे थे कि न उसके मुँह में पानी का एक कतरा गया था, न खाने का एक ग्रास। विश्राम का एक क्षण भी उसे उपलब्ध न हुआ था। वह मौन दृढ़ता से अपना कार्य कर रहा था। उसका यह हाल देखकर, एक रोगी से जिसकी दशा अब पहले के अपेक्षाकृत अच्छी थी, रहा न गया। उसने कहा—

"डाक्टर साहब!"

इकबाल ने सर उठाकर उसकी तरफ देखा।

"हाँ भई क्या कहते हो? दर्द है कहीं?"

वह कमजोर आवाज से बोला—

"नहीं! मैं यह कहता हूँ, इतनी देर हो गई आपको काम करते।

पल भर भी तो आपने आराम नहीं लिया। कहीं खुदानाखास्ता आप भी बीमार न पड़ जायें।"

वह मुस्कराया—

"तुम फिक्र न करो, मैं बड़ा सख्तजान हूं।"

"कुछ देर तो आराम कर लीजिये।"

"यह एक मरीज और बाकी है। इसके इन्जेक्शन लगा लूँ तो कुछ देर के लिये सो रहूँगा।"

आखरी मरीज से फारिग होकर, वह अपने कमरे की तरफ चला गया कि तनिक सुस्ता ले; इतने में एक हृदय-विदारक चीख उसके कान में आई—

"डाक्टर साहब! डाक्टर साहब!!"

वह जाते-जाते रुक गया। मुड़कर देखा तो सुन्दरता और मधुरता की एक सजीव प्रतिमा, करुणा का समूर्त रूप सामने खड़ी थी। डाक्टर को देखकर उसने अपने मुँह पर पल्लू डाल लिया। उसकी साँस जोर-जोर से चल रही थी और आँखों से आँसू जारी थे। इकबाल ने नरमी और दयालुता से कहा—

"क्या है? तुम कौन हो?"

वह सिसकी लेती बोली—

"खुदा के लिये मेरी मदद कीजिये। बाबा के गिल्टी निकल आई। दम तोड़ रहे हैं वह।"

इस अपरिचिता ललितांगी के रोदनयुक्त स्वर को सुनकर इकबाल से रहा न गया। वह तुरन्त उसके साथ चल पड़ा। उसके घर पहुँचा तो पता चला कि यह चौधरी अमजदअली का घर है और यह उसकी एक-मात्र लड़की हमीदा है। हमीदा को उसने एक-आध बार बचपन में देखा था तथा भूल भी गया था। आज मालूम हुआ कि वह क्या से क्या बन गई है।

चौधरी साहब अर्द्ध-मूर्छित दर्द से कराह रहे थे। उनकी यह शोच-

नीय स्थिति देखकर वह मछली की तरह तड़प रही थी। यह दृश्य देखकर इकबाल बहुत प्रभावित हुआ। उसने हमीदा को सान्त्वना दी—

"आप जरा भी न घबराइये। यह बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे। बहुत मामूली असर है।"

यह कहकर वह चौधरी साहब की देखभाल और इलाज में लग गया। इसने दो इन्जेक्शन दिये, हवा और रोशनी का प्रबन्ध किया; फिर सेवा-शुश्रूषा से सम्बन्धित आवश्यक निर्देश दिये। तत्पश्चात् सहसा उसके बहार अन्दर बहार मुखड़े की तरफ देखने लगा। वह शरमा गयी। उसने कहा—

"बाबा अच्छे हो जायेंगे?"

"जरूर।"

"मर्ज का हमला ज्यादा शदीद तो नहीं?"

"बिल्कुल नहीं! लेकिन एक बात···"

और एक बार फिर उसकी नजर खूबसूरत हमीदा के चेहरे पर पड़ी। और वह खो सा गया। वह बोली—

"कुछ कह रहे थे आप?"

वह चौंक पड़ा। अटक-अटककर बोला—

"मैं यह कह रहा था, घबराने की बात नहीं, लेकिन ऐतयाल की सख्त जरूरत है।"

हमीदा खामोश रही। वह फिर बोला—

"अच्छा अब मैं जाता हूँ। सुबह-शाम मैं इन्हें देखने आता रहूँगा। लेकिन अगर बीच में किसी वक्त आप मेरी जरूरत महसूस करें तो मैं फौरन आ जाऊँगा।"

हमीदा मद्धम आवाज में बोली—

"आपकी मेहरबानी का शुक्रिया।"

और इकबाल खामोशी के साथ बाहर जाने के लिये चला। उस समय उस पर उन्माद तारी था। वह अपना बैग वहीं भूल गया और

बाहर की तरफ जाने के बजाये अन्दर कमरे की तरफ बढ़ा। हमीदा बैग देते हुए उससे बोली—

"रास्ता इधर है डाक्टर साहब !"

वह लज्जित सा हो गया।

"ओह ! मैं कुछ खो सा गया था, शुक्रिया !"

वह बैग लेकर चला गया। लेकिन उसके (हमीदा के) शब्द इकबाल के कानों में गूँज रहे थे। वह मुँह में स्वतः बोली—

"कह रहे थे मैं खो सा गया था—लेकिन क्यों ? किस चीज में खो गये थे ?"

ईश्वर जाने उसे क्या ख्याल आया। वह जल्दी से अपने बाप के कमरे में गई। वह आराम से सो रहा था। नब्ज ठीक चल रही थी तथा ज्वर बहुत हल्का था। उधर से संतुष्ट होकर वह फिर अपने कमरे में आई। सामने शीशा रखा था। वह शीशे के सामने खड़ी होकर अपना सर्वेक्षण करने लगी। सम्भवतः वह शीशे से पूछ रही थी कि डाक्टर साहब मुझे देखकर तो नहीं खो गये थे ? सच-सच बता क्या मैं वाक़यी ऐसी हूँ कि मुझे देखकर वह खो से गये ? अपने आपको भूल गये ? उनके पैर लड़खड़ा रहे थे। उनकी आँखें कुछ कह रही थीं। यह सब क्या था ? क्यों था ? इसे क्या कहते हैं ?—मुहब्बत—हाय मेरे अल्ला; अब क्या होगा ?

वह शीशे के सामने खड़ी थी। वह अपने आप में खोई थी कि किसी के खखारने की आवाज आई। उसने दुपट्टा ठीक किया। पीछे मुड़कर देखा; तो बदमाश दिलावर खड़ा मुस्करा रहा था। यह रिश्ते में चौधरी साहब का भतीजा होता था तथा गाँव भर के लफंगों और बदमाशों का सरदार था। हमीदा ने त्योरी चढ़ाकर उसकी तरफ देखा और बोली—

"क्या है ? क्यों आये तुम ?"

वह हँसने लगा—

"हुस्न की छुरी को शान पर चढ़ाया जा रहा है ?"

और फिर गाने लगा—

"अदा व नाज को जालिम तेरी शमशीर कहते हैं ।"

हमीदा ने बिगड़कर कहा—

"ये बेहूदा बातें मुझे नहीं अच्छी लगतीं । तुम अकेले-दुकेले मेरे घर में क्यों आते रहते हो ? कह दूँगी किसी दिन बाबा से तो सारी शेखी किरकिरी हो जायेगी ।"

दिलावर ने मूँछों पर ताव देकर कहा—

"कह देना, कह देना ; यहाँ किसी से डरते नहीं । वह गाँव के चौधरी हैं तो हम भी अपने साथियों के सरदार हैं । समझीं ? हाँ ।"

"मालूम है तेरी सरदारी ; बदमाशों का सरदार बना फिरता है । मुआ लुच्चा कहीं का ।"

दिलावर ने अकड़े हुए स्वर में कहा—

"तुम्हें तो कुछ नहीं कह सकता । कोई और यह बातें कहता तो जबान खैंच लेता उसकी गुद्दी से—जवानी क़सम !"

"चल-चल, बड़ा आया है जवान बन के, परायी बहू-बेटियों पर अपनी शेखी जताने !"

इतने में चौधरी के कराहने की आवाज आयी । वह तेजी से बाप के कमरे की ओर लपकी । दिलावर भी साथ-साथ आया । पूछने लगा—

"क्या हुआ इन्हें ?"

"प्लेग हो गया है कल से ! गिल्टी भी निकली है । डाक्टर का इलाज हो रहा है ।"

प्लेग का शब्द सुनकर दिलावर के औसान उड़ गये । वह सारी चौकड़ी भूल गया । अभी चन्द रोज हुए उसका बाप इसी में मरा था । वह बहुत डरने लगा था । वह चौधरी को देखे बगैर ही खिसक गया ।

कोई पन्द्रह दिन के बाद चौधरी अमजदअली ने स्वास्थ्य प्राप्त किया । वे पन्द्रह दिन इकबाल ने आँखों में काटे । उसके समय का अधि-

कांश भाग गाँव वालों की चिकित्सा में बीत जाता था। उसे अपने स्वास्थ्य की चिन्ता भी नहीं थी। वह ऐशो-आराम को, खाने-पीने को बिल्कुल भूल चुका था। केवल एक चिन्ता थी इसे—किसी तरह गाँव से यह बीमारी दूर हो जाये। किसी तरह चौधरी साहब पुनः स्वास्थ्य लाभ कर लें। गाँव की दशा अब अपेक्षाकृत अच्छी थी। और चौधरी साहब तो बिल्कुल चंगे हो चुके थे। सिर्फ थोड़ी सी कमजोरी बाकी थी।

इकबाल चौधरी साहब की पट्टी से लगा बैठा था। इतने में हमीदा आई। इकबाल ने कहा—

"अब यह बिल्कुल तन्दुरुस्त हैं। मर्ज का कहीं नाम-निशान भी नहीं।"

हमीदा की आँखों में खुशी के आँसू भर आये। शरमाती हुई आँखों से देखकर बोली—

"किस जबान से आपका शुक्रिया अदा करूँ डाक्टर साहब!"

"ओ हो; अब आप तकल्लुफ पर उतर आयीं। इसकी जरूरत नहीं साहब!"

हमीदा भावावेश में कहे जारही थी—

"आपने बाबा के साथ मुझे भी एक नयी जिन्दगी बख्श दी।"

भला चौधरी साहब क्यों खामोश रहते? उन्होंने कमजोर और मद्धम आवाज में कहा—

"तुम्हारा भला हो बेटा! बिना माँ की बच्ची को यतीम बनने से बचा लिया तुमने।"

फिर चौधरी साहब ने पूछा—

"गाँव का क्या हाल है बेटा?"

इकबाल ने जवाब दिया—

"खुदा के फज़ल से बहुत अच्छा है। सिर्फ तीन-चार आदमी मरे; बाकी अकसर तन्दुरुस्त हो गये। दो दिन से कोई नया केस नहीं हुआ।

चन्द आदमी अभी बीमार हैं। उम्मीद है, वह भी जल्द अच्छे हो जायेंगे।"

"जीते रहो बेटा; खुदा तुम्हें मुल्क का सब से बड़ा डाक्टर बना दे।"

इकबाल हँसने लगा। हमीदा ने मुस्कराते हुए कहा—

"आमीन !"

थोड़ी देर के बाद इकबाल जाने के लिये उठा। हमीदा उसे दरवाजे तक पहुँचाने आयी। जाते हुए इकबाल ने कहा—

"मुबारिक हो, चौधरी साहब बिल्कुल तन्दुरुस्त हो गये।"

हमीदा ने आभारी निगाहों से उसे देखा और कहा—

"शुक्रिया !"

फिर टकटकी बाँधकर उसे देखने लगी। इकबाल उसकी इन क़ातिल निगाहों की ताब न ला सका। उसने पूछा—

"क्या देख रही हैं आप ?"

वह बोली—

'फरिश्ता अगर आदमी का लिबास पहन ले; तो कैसा लगता है ? यही देख रही थी।"

इकबाल बाहर चला गया। हमीदा अन्दर चली गई।

रास्ते भर इकबाल के कान में हमीदा के मदभरे शब्द गूँजते रहे। वह पहली नजर में हमीदा को दिल दे बैठा था, और अब सोच रहा था—क्या हमीदा का हृदय भी मेरी ओर आकृष्ट है ? क्या वह भी मुझे चाहती है ? क्या उसके हृदय पर मैं अधिकार कर सकता हूँ ? क्यों नहीं ? वह भी ग़रीब है, मैं भी गरीब हूँ। लोग झोंपड़े में रहकर महलों के स्वप्न देखते हैं, मैं महलों में रहकर झोंपड़ों के सपने देखता हूँ। बेशक महलों में मेरी परवरिश हुई है। लेकिन वहाँ मैं रह सकता हूँ, खप नहीं सकता। मेरी मुहब्बत झोंपड़े में रहकर ही परवान चढ़ सकती है। तो क्या हमीदा मुझे मिल जायेगी ? चौधरी साहब राजी हो जायेंगे ? नवाब साहब इजाजत दे देंगे ? बेगम साहिबा इस रिश्ते को पसन्द कर लेंगी ? और जुबैदा ? वह कितना छेड़ेगी मुझे ? शरीर कहीं की। बड़ी चंचल

है। और सुरैया ? वह बड़ी शरीफ लड़की है। सारे घर में हमीदा की ख़ातिर वही करेगी। बिल्कुल अपने बाप पर पड़ी है। वही शराफ़त, वही मुहब्बत, वही रहम।

हस्पताल आगया और वह रोगियों के समूह में खो गया।

९

इक़बाल के बिछोह ने सुरैया के मन और मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला। वह दीप की तरह मौन थी, लेकिन दीप की तरह जल रही थी। उसकी मौनता सब देखते थे लेकिन उसका जलना और घुलना किसी को दिखाई न पड़ता था—अतिरिक्त ज़ुबैदा के। ज़ुबैदा, सुरैया के स्व-भाव से परिचित थी। वह जानती थी कि सुरैया बड़ी ज़िद्दी और हठी लड़की है। किसी को अपने रहस्य में सम्मिलित नहीं करेगी। किसी के सामने प्रणय-निवेदन नहीं करेगी, किसी तरह अपनी हार नहीं मानेगी। घुल-घुलकर मर जायेगी, मगर अधर तक न हिलायेगी। नाकाम तथा नामुराद क़ब्र में पहुँच जायेगी मगर फ़रयाद तक नहीं करेगी। जिसको चाहती है उसकी चाह में जान तक दे देगी—आहों और कराहों को अपने अन्तर्मन में स्थान नहीं देगी। जब वह इकबाल तक पर अपनी मुहब्बत को ज़ाहिर नहीं करती, तो किसी और पर क्या करेगी?

सुरैया का दिल रोता था। सब हँसते थे। वह घर की समस्त क्रिया-विधियों में भाग लेती, मगर बुझे हुए दिल से। वह इकबाल के कुशल समाचार के लिये व्याकुल थी, मगर क्या मजाल कि कभी पूछ ले कि पत्र आया? समाचार आया? ज़ुबैदा उसका मन बहलाने की, उसे हँसी-मज़ाक में उलझाने की और बातों-बातों में उसके मन के रहस्य का पाने का प्रयास करती, मगर कभी सफल नहीं हुई। वह विशाल नील गगन के शून्य में उड़ने वाले पक्षी की भाँति कभी हाथ न आयी। अपने रहस्य को जान से अधिक महत्त्व देती थी। और अपने स्वाभिमान पर

किसी तरह की आँच न आने देती थी। वह थी सुरैया नवाब दिलावर जंगबहादुर की लड़की। एक रोज फिर जुबैदा ने सुरैया को टटोलने की कोशिश की। कहने लगी—

"अच्छा, एक बात पूछूँ, बताओगी ?"

सुरैया ने सम्पूर्ण चेतना को उसकी ओर उन्मुख करके कहा—

"क्यों नहीं बताएँगे ? पूछो।"

"सच-सच बताना।"

"बिल्कुल सच-सच।"

"किसी को चाहती भी हो ? किसी से मुहब्बत भी है तुम्हें ?"

सुरैया हँस पड़ी।

"बस, यही इत्ती सी बात ?"

"हाँ, यही बताओ।"

"क्यों नहीं चाहती ? चाहती हूँ।"

जुबैदा ने उत्सुकता के साथ पूछा—

"तो नाम बताओ, किसे ?"

सुरैया मुस्कराई।

"मैं हजूर अब्बाजान को इतना चाहती हूँ, इतना चाहती हूँ कि ......"

जुबैदा ने बात काटी—

"हाँ मालूम है। अच्छा और भी किसी को चाहती हो ?"

"अम्माजान को।"

"मालूम है, माँ को कौन नहीं चाहता ! और भी है कोई जिससे मुहब्बत हो तुम्हें ?"

सुरैया ने कुछ सोचकर कहा—

"हाँ भई है, एक और हस्ती भी है।"

जुबैदा को विश्वास हो गया। अब उगल देगी सुरैया सब कुछ। बड़े प्यार से बोली—

"शाबाश ! कौन है वह ?"

सुरैया ने अत्यन्त गम्भीरता के साथ कहा—

"तुम !"

ज़ुबैदा बिगड़ गई—

"तोबा भई, फिर वही मज़ाक।"

"क़सम ले लो, जो मैं झूठ कहती हूँ।"

सुरैया हँसने लगी। ज़ुबैदा जल गई। उसने कहा—

"मैं जाती हूँ।"

"अरे सुन तो !"

लेकिन वह चली गई। सुरैया अपने वाचनालय में पहुँची और पुस्तकें देखने लगी। थोड़ी देर बाद ज़ुबैदा फिर आयी। डाक आ चुकी थी। वही बहुत सी पत्रिकाएँ, समाचार-पत्र, पुस्तकें, कतिपय प्रकाशों के पत्र, सुरैया ने उलट-पलट कर सबको देखा और रख दिया। इनमें इकबाल का कोई पत्र नहीं था। सुरैया का जी चाहा कि ज़ुबैदा से पूछे; अम्मा या अब्बा के पास कोई पत्र जमालपुर से आया है ? लेकिन इस भाव को भी उसने मर्दित कर दिया। सतत मौन रहीं। कुछ नहीं पूछा। ज़ुबैदा सुरैया की मौनता का आश्रय समझ रही थी। लेकिन वह उसकी कोई सहायता नहीं कर सकती थी। इक़बाल का पत्र आया होता तो वह स्वयं उसे लाकर देती। सुनाती, मज़ाक करती, छेड़ती; लेकिन आया होता जब ना ?

सुरैया को चुप देखकर ज़ुबैदा समाचार-पत्र देखने लगी। कुछ देर के बाद उसने सर उठाया तो देखा कि सुरैया पूर्णरूपेण मौन है। सामने वह मार्ग है, जिससे इकबाल कॉलेज आया-जाया करता था। इसी पथ को सुरैया खड़ी निहार रही है। सुरैया को ज़ुबैदा ने नज़र भरकर देखा फिर नरमी और धीरे से समीप आकर उसके कंधे पर हाथ रख दिया और कहा—

"किस सोच में बैठी हो सुरैया ?"

वह अस्थिर बैठी रही। सतत मौन। उसने कोई उत्तर नहीं दिया, जुवैदा फिर बोली—

"क्या देख रही हो उधर ?"

सुरैया ने पथ की ओर निहारते हुए और जुवैदा से अभिहित हुए बिना कहा—

"कुछ नहीं, इस पगडंडी पर से जिन्दगी के बहुतेरे मुसाफिर गुजरते हैं; कुछ लौट आते हैं, कुछ नहीं लौटते।"

यह कहकर सुरैया ने एक ठंडी साँस भरी तथा फिर उसी ओर देखने लगी। जुवैदा की आँखों में आँसू झलक आये। वह बोली—

"अगर मंजिल में कशिश है तो मुसाफिर कहीं भी हो, लौटकर उसी की तरफ आता है, तू घबराती क्यों है पगली ? तेरा मुसाफिर भी ज़रूर वापस आयेगा।"

जुवैदा की बातें सुनते-सुनते सुरैया ने अपने ऊपर काबू पा लिया था। वह उठ खड़ी हुई और बोली—

"कुछ होश में हो ? मेरा मुसाफिर कौन ?"

जुवैदा जल ही तो गई। बल खाकर बोली—

"फिर अभी फलसफा-फलसफा में क्या फ़रमाया जा रहा था ? मुझसे उड़ती हो ?"

सुरैया ने अत्यन्त धैर्य से कहा—

"कुछ भी नहीं; मैंने तो एक बात कही थी यों ही। तुमने बात का बतंगड़ बना दिया।"

जुवैदा ने माथे पर हाथ मारकर कहा—

"धन्य है महाराज; तुमसे कोई जीत नहीं सकता।"

सुरैया हँसने लगी। और जुवैदा फिर रूठकर चली गई। और जाते-जाते उसने कहा—

"मैं भी बड़ी बेग़ैरत हूँ, जो तुम जैसी बेवफ़ा पर मरती हूँ।"

सुरैया आवाज़ देती रह गयी, लेकिन वह नहीं रुकी; चली गई।

१०

चौधरी अमजदअली अब बिल्कुल अच्छे हो चुके थे। सिर्फ थोड़ी सी कमज़ोरी बाकी रह गई थी। वह अपनी चारपाई पर लेटे हुक्का पी रहे थे। दिलावर आया। और पाँयेंती पर बैठ गया। हमीदा घर में मौजूद नहीं थी। मौका देखकर दिलावर ने चौधरी साहब को परचाना शुरू किया—

"आपकी सलामती के लिये कितनी-कितनी दुआएँ कर डालीं चाचा। ठान ली थी, कुरबान हो जाऊँगा; मगर बाल-बाँका न होने दूँगा आपका ?"

चौधरी साहब मुस्कराये और "हूँ" कहकर मौन हो गये। दिलावर ने फिर कहा—

"खुदा का शुक्र है कि आप भले-चंगे हो गये और मेरी मेहनत स्वारथ हो गई।"

इस समय चौधरी साहब भी मौज में थे। उन्होंने भी दिलावर को बढ़ावा दिया। बोले—

"हाँ भई; तुम्हारी मेहरबानी का शुक्रगुजार हूँ। तुम न होते तो मैं मर ही गया होता। कौन मेरी रखवाली करता। हमीदा बेचारी क्या जाने; तीमारदारी किसे कहते हैं ?"

"जी और क्या।"

बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण स्वर में चौधरी साहब ने कहा—

"जियो बेटा।"

दिलावर ने लपककर कहा—

"मुझे तो आपका गुलाम बनकर रहना है, आपके ही साये में।"

इतने में ही दवा की शीशी लिये हुए बाहर से हमीदा आई। वह दिलावर को देखकर खटकी। दिलावर उसे देखकर चौंका। दोनों ने एक दूसरे को देखा। हमीदा की नज़रों में घृणा थी। दिलावर की आँखों में स्वार्थ और वासना चमक रही थी। दिलावर ने हमीदा की ओर देखकर अमजदअली से कहा—

"मैं आखिर किसलिये हूँ? क्या मैं डाक्टर के पास नहीं जा सकता? दवा नहीं ला सकता?"

हमीदा ने कड़वे स्वर में कहा—

"क्यों नहीं, तुम सब कुछ कर सकते हो। झाड़ू भी दे सकते हो, खाना भी बना सकते हो; लेकिन तुम आये कैसे?"

"अपने चाचा के पास आया हूँ।"

"लेकिन अब तक कहाँ थे?"

"यह लो, सुनते हो चाचा? जैसे मैं आया ही नहीं। मैंने तुम्हारी ख़िदमत ही नहीं की।"

हमीदा चिड़चिड़ेपन से बोली—

"बड़ा हौसला हो गया है अब तो?"

दिलावर ने मूँछों पर ताव देकर कहा—

"कब नहीं था?"

"बाबा को प्लेग है और आप पास बैठे हैं।"

प्लेग का नाम सुनते ही दिलावर फिर सहम गया।

"तो मतलब है कि मैं चला जाऊँ?"

"तुम जानो मैं क्या कहूँ?"

"अच्छा भई जाते हैं।"

और वाक़यी वह रफ़ूचक्कर हो गया। अमजदअली ने व्यंगस्मित अधरों पर लाकर कहा—

"कैसी-कैसी डींगें मार रहा था लुच्चा कहीं का।"

"शोहदा कहीं का ! यह इस क़ाबिल नहीं है बाबा कि घर में आये।"

"जानता हूँ बेटी।"

"मुझे छेड़ा करता है।"

"छेड़ता है तुझे ?"

"हाँ बुरे, गन्दे-गन्दे इशारे करता है और ऐसी बातें कहता है जिन्हें मैं दोहरा नहीं सकती। आप मना कर दीजिये।"

चौधरी गुस्से से बोला—

"अब आया तो पाँव तोड़ दूँगा साले के, समझा क्या है मुझे ?"

हमीदा ने बाप को दवा पिलाई और स्वयं दूसरे काम-काज में लग गई। शाम को वह नवाब साहब के बगीचे में, जो उनकी कोठी में बना हुआ था, पहुँची। उस समय मौसम काफ़ी सुहावना था। आकाश पर बादलों के टुकड़े तैर रहे थे। ठण्डी-ठण्डी हवा के झोंके तैर रहे थे। नन्हीं-नन्हीं बूँदे पड़ रही थीं। इतने में इकबाल आ गया। उसे देखकर हमीदा फूल की तरह खिल गई। उसने कहा—

"आगईं हमीदा ?"

"कैसे न आती, आपने बुलाया जो था।"

"इतना ख़याल करती हो मेरा ?"

हमीदा शरमा गयी। इकबाल और क़रीब आ गया। उसने हमीदा की ठोड़ी ऊपर उठाई। आँखों से आँखें मिलायीं और पूछा—

"बोलो, जवाब दो।"

वह फिर शरमा गई। उसने गरदन नीची कर ली। और कोई जवाब नहीं दिया। सामने गुलाब का एक सुन्दर पौदा था। हमीदा ने एक फूल लिया तथा उसे सूँघने लगी। इकबाल ने भी फौरन एक फूल तोड़ा और हमीदा के बालों में अटकाये हुए कहा—

"एक मुसाफिर का हकीर नजराना।"

सामने एक हौज था। इकबाल ने कहा—

"आओ, देखो कितना अच्छा लगता है यह।"

वे दोनों हौज़ के किनारे आकर बैठ गये। बैठे-बैठे हमीदा ने अपने हाथ का फूल इकबाल के कोट में उलझा दिया तथा बोली—

"एक ग़रीब का नाचीज़ तोफ़ा!"

दोनों हौज के किनारे बैठ गये और पानी में देखने लगे। इकबाल ने हमीदा के प्रतिविम्ब की तरफ देखते हुए कहा—

"यह कौन है?"

वह मुस्करा दी। उसने कहा—

"आप ही बताइये कौन है यह?"

इकबाल ने कहा—

"चोर!"

हमीदा ने आश्चर्य से कहा—

"चोर?"

"हाँ, इसने मेरी बड़ी क़ीमती चीज़ चुराई है।"

"बचाव न किया होगा आपने।"

"बहुत किया, फिर भी इसने मेरी ज़िन्दगी पर डाका डाला और मेरा दिल चुरा लिया।"

"तो आप इतने गाफ़िल क्यों थे?"

"गाफिल कहाँ था। दिल का काफ़िला लुटता रहा, और मैं देखता रहा। कुछ न कह सका। लूट लिया लूटने वाले ने सब कुछ!"

हमीदा ने हौज़ में झाँकते हुए इकबाल के प्रतिविम्ब की ओर संकेत किया और इकबाल से कहा—

"इन जात शरीफ़ को आप जानते हैं?"

"जानता हूँ एक मज़लूम है बेचारा।"

"जी मज़लूम नहीं उस्ताद है बेचारा।"

"किसे कह रही हो हमीदा?"

"इन हज़रत को।"

"यह तो बड़ा मासूम है ।"

"जी नहीं, बड़े लुटेरे ; और लोग तो डाका डालते हैं । और यह बातों-बातों में चोरी कर ले जाते हैं ।"

"चोरी ?"

"जी जनाब !"

"क्या चुराया इसने ?"

"खोटा सा दिल देकर अच्छा सा दिल उड़ा ले गये और बनते हैं बड़े मासूम, बड़े मज़लूम ।"

इकबाल ने एक छोटा सा पत्थर हमीदा के हाथ में देकर कहा—

"तो लो, मारो इसे ।"

हमीदा ने वह पत्थर लेकर हौज़ में फैंक दिया और दोनों हँसने लगे ।

इकबाल ने कहा—

"आज का समय कितना सुहाना है । हर तरफ़ बहार ही बहार है । ऐसे में कोई गाये तो दिल झूम-झूम जाये । हमीदा कुछ सुनाओ ।"

"कहानी कोई—एक था बादशाह ।"

"यह नहीं, गाना ।"

"मुझे नहीं आता ।"

"आता हो या न आता हो, सुनाना पड़ेगा ।"

हमीदा ख़ामोश हो गई । धीरे-धीरे गुनगुनाने लगी और फिर उसने एक मधुर गीत गाया । वातावरण मौन था । ऐसा प्रतीत होता था मानों नशा छाया हो । इकबाल पर एक अद्भुत प्रतिक्रिया हुई थी । सहसा हमीदा गाते-गाते रुक गई । इकबाल ने पूछा—

"क्या है ? रुक क्यों गई ? गाओ, गाये जाओ, गाती रहो ।"

"हमीदा ने सहमी हुई मुद्रा में देखा झाड़ी की ओर तथा कहा—

"कोई है ।"

"साये से भड़कती हो ? यहाँ कौन आ सकता है ?"

इतने में दिलावर सामने आकर खड़ा हो गया । उसको देखकर

हमीदा का रंग उड़ गया। इकबाल भी घबरा गया। दिलावर ने स्थिरता से कहा—

"मैं आ सकता हूँ, मैं आ गया।"

हमीदा और इकबाल खामोश रहे। दिलावर ने हमीदा को सम्बोधित होकर कहा—

"यह गुलछर्रे उड़ाये जा रहे हैं यहाँ ?"

फिर वह इकबाल की ओर आकृष्ट हुआ—

"कहिए डाक्टर साहब, कैसा मिजाज है ? सब खैरियत तो है ना ?"

हमीदा और इकबाल ने कोई जवाब नहीं दिया। दिलावर ने इकबाल से कहा—

"आप हमारे गाँव में इसलिये आये हैं कि यहाँ की अनजान और नादान छोकरियों को बरगलायें ? अभी जाता हूँ नवाब साहब के पास, और सारे गुल खोल कर रख दूँगा आपके। बड़े छुपे रुस्तम निकले आप तो।"

दिलावर चला गया। ये दोनों स्तब्ध रह गये। थोड़ी देर के बाद चेतना को प्रशस्त करके हमीदा ने कहा—

"अब क्या होगा ?"

और वह रोने लगी। इकबाल ने उसके आँसू पोंछते हुए कहा—

"घबराती क्यों हो ? वह क्या करेगा ?"

"सारे गाँव में निक्कू कर देगा। बाबा मार डालेंगे जान से !"

"ऐसा नहीं हो सकता हमीदा ! मैं जिस तरह भी होगा, इसका मुँह बन्द करूँगा। बदमाश आदमी बड़ा लालची होता है। यह पहले दर्जे का लुच्चा और बदमाश है।"

हमीदा ने सहमकर कहा—

"देखें, अब क्या होता है ?"

"कुछ भी नहीं होगा। जरा भी न घबड़ाओ। चलो, मैं तुम्हारे घर तक पहुँचा दूँ।"

और वह हमीदा को लेकर चल खड़ा हुआ।

११

नवाब साहब और बेगम साहिबा को जमालपुर की और उससे अधिक इकबाल के स्वास्थ्य की चिन्ता थी। लेकिन इकाबाल के नये पत्र ने चिन्ता को हर्ष में परिवर्तित कर दिया था। इकबाल ने लिखा था कि अब जमालपुर की हालत सुधर चुकी है। सप्ताह भर में ईश्वर की कृपा से प्लेग का चिह्नमात्र भी शेष न रहेगा। फिर मैं आपके चरणों में उपस्थित हो जाऊँगा। आपके देखने के लिए आँखें तरस गई हैं। नवाब साहब और बेगम साहिबा में इस समय इकबाल के बारे में ही बात हो रही थी। दोनों उसके आज्ञा-पालन, सुसंस्कृत स्वभाव से अत्यन्त प्रसन्न थे। यह देखकर उनकी प्रसन्नता और बढ़ जाती कि उनकी शिक्षा-दीक्षा कितना अच्छा रंग ला रही है।

बेगम ने कहा—

"इकबाल नहीं है तो यह घर सूना-सूना सा लगता है।"

"क्यों न लगे! अब वह गैर कहाँ है? इस ख़ानदान का एक मेम्बर है। हमारा हर काम उसने अपने जिम्मे ले लिया है। जिन्दादिल इतना है कि देखो आग में कूद पड़ा जाकर।"

नवाब साहब ने भी कहा।

बेगम बोली—

"मैं कहती हूँ क्यों जाने दिया आपने? खुदा न करे कुछ हो जाता तो?"

"मैंने जाने दिया तो तुमने क्यों न रोक लिया? बात ही ऐसी थी कि न तुम कुछ कह सकती थीं और न मैं! खैर, अब इन शिकायतों का क्या

मौक़ा ? अब तो वह आने वाला है।"

सुरैया किसी काम से इधर से गुजरी। उसने माँ-बाप की बातें सुनलीं। उसका मुरझाया हुआ चेहरा पुनः खिल उठा। दिल घुटा-घुटा सा रहता था, अब उसमें फिर उमंगें पैदा होने लगीं। इकबाल के बिछोह ने एक स्थायी पीड़ा और वेदना को जन्म दिया था; यह सुनकर कि वह शीघ्र आने वाला है, कुशलपूर्वक है, हर्ष एवं प्रसन्नता का आविर्भाव हुआ। स्वभाव के प्रतिकूल वह मुस्कराई। जुबैदा के कमरे में पहुँची तथा देखा कि वह एकाग्रता से कुछ लिख रही है। सुरैया और क़रीब पहुँची। जुबैदा उसे देखकर चौंक पड़ी और अपने लिखे हुए को छुपाने लगी। सुरैया ने कहा—

"क्या लिखा जा रहा है ? कोई गजल ?"

जुबैदा कागज़ समेटते हुए बोली—

"नहीं ख़त।"

"किसे ? वह कौन खुशक़िस्मत है जो तुम्हें याद आ रहा है ? जिसे तुम ख़त लिख रही हो ?"

"है कोई तुम्हें क्या ?"

सुरैया मुस्कराई।

"है क्यों नहीं, ऐ ग़ज़ब खुदा का, जवान जहान लड़की गैर मर्दों को ख़त लिखे और मैं बैठी देखती रहूँ ? जाती हूँ, अम्मी हज़ूर से एक-एक की दस-दस लगाऊँगी।"

जुबैदा ने देखा कि आज सुरैया नित्यप्रति की अपेक्षा खुश है। वह भी उसे देखकर तरंग में आ गई। कहने लगी—

"गैर मर्द क्यों ? अपना है जिसे लिख रही हूँ ख़त !"

सुरैया ने माथे पर हाथ मारकर कहा—

"हाय गजब, यह तो हाथ से गई। ऐ मैं पूछती हूँ कौन है वह, जो अपना हो गया, और हमें ख़बर भी नहीं ?"

"फिर वही, है कोई। क्यों बताएँ ?"

"न बताओ, अम्मी हज़ूर आकर खुद पूछ लेंगी। उन्हें भी न बतलाना तो जानूँगी।"

सुरैया बाहर जाने को मुड़ी। जुबैदा ने बढ़कर उसे रोका—

"अरे, तुम तो खफा हो गईं—अच्छा आओ बताये देती हूँ।"

सुरैया पास आकर बैठ गई।

"दिखाऊँगी नहीं, सुनादूँगी।"

"हम तो देखेंगे।"

"जिद्द न करो सुरैया, सुन लो।"

"अच्छा सुनाओ।"

जुबैदा ने अपना लिखा हुआ खत सुनाना शुरू किया—

"बेवफा, बेमुरव्वत, संगदिल !"

"यह क्या है, मुख़ातिब करने का ढंग ?"

"हाँ, हाँ, सुनती हो या नहीं ?"

"अच्छा सुनाओ, अब नहीं बोलेंगे।"

"दिल की दुनिया तुम से आबाद थी। लेकिन अब सूनी पड़ी है। सूरज उसी तरह निकलता है, चाँद उसी तरह चमकता है, तारे उसी तरह खिलते हैं, दुनिया की रौनक़ उसी तरह क़ायम है, लेकिन मुझे ऐसा मालूम देता है, सूरज की चमक किसी ने छीन ली है। चाँद की रोशनी मन्द हो गई है। तारे बेनूर हो गये हैं और दुनिया की रौनक़ खत्म हो गई है। जानते हो क्यों ? इसलिये कि मेरी दुनिया तुम थे। मेरी उम्मीदों के आसमान पर तुम्हीं थे—जो सूरज की तरह जगमगाते और चाँद की तरह तथा तारों की तरह झिलमिलाते थे।"

सुरैया से सहन न हो सका। वह बोल पड़ी—

"जुबैदा, यह तुझे क्या हो गया है। यह किससे पींग बढ़ाये जा रहे हैं ? तू अपने साथ सारे खानदान की नाक कटवादेगी। आहे रे तेरा दीदा ! तू अब जुबैदा नहीं रही कुछ और बन गई है। मुझे तो सोच-सोचकर हौल हो रही है।"

ज़ुबैदा रूठ गई । उसने कहा—

"इसीलिये मैं नहीं सुनाती थी । जाओ, अब नहीं सुनाऊँगी ।"

"हाय मेरे अल्ला, तो अभी कुछ और बाक़ी है । यह इतना क्या लिख मारा है तूने ?"

"बाक़ी क्यों नहीं है, यह तो शुरू का एक हिस्सा है ।"

"यह शुरू का है ? अभी असल ख़त बाक़ी है ?"

"हाँ ।"

"अच्छा तो सुनाओ ।"

"नहीं सुनाते ।"

"अब नहीं बोलूँगी···वायदा करती हूँ ।"

"झूठी कहीं की ।"

"सच, अब नहीं बोलूँगी ।"

"तो सुनो, लेकिन अब बीच ही में न टपक पड़ना ।"

ज़ुबैदा ने फिर सुनाना शुरू किया—

"तुम मेरी ज़िन्दगी हो, तुम्हारे बग़ैर ज़िन्दगी बेकार है । तुम्हारे बगैर मैं एक पल भी सुखी नहीं रह सकती । तुमने मुझे एक ख़त भी नहीं लिखा । हालाँकि मैं तुम्हें रोज ख़त लिखती रही । यह दूसरी बात कि तुम्हें भेज न सकी । तुम मेरे पास एक बार भी न आये, हालाँकि मैं हर एक लमहा तुम्हारे पास गुज़ारती हूँ । सचमुच न सही, आम ख्याल में ही सही । आख़िर यह जुदाई के दिन कब ख़त्म होंगे ? यह फिराक की रातें कब कटेंगी ? यह दुखदर्द की घड़ियाँ कब बीतेंगी ? सच, कभी मैं भी याद आई हूँ तुम्हें ? कभी याद करते हो मुझे ? मैं अपने दिल को झूठी तसल्ली देती रहती हूँ । लेकिन कब इस नामुराद को बदला सकूँगी ?"

सुरैया फिर बोली—

"बस कर ज़ुबैदा ।"

"हाँ, अब ख़त्म भी हो गया ।"

ज़ुबैदा ने ख़त और कलम सुरैया की तरफ बढ़ाया और कहा—

"लो दस्तख़त कर दो।"

"दस्तख़त कर दूँ, मैं ?"

"हाँ तुम, जल्दी कर दो, देर हो रही है, फिर डाक निकल जायेगी।"

"कुछ पगली हुई है, मैं दस्तख़त क्यों करूँ ?"

"यह लो, ख़त भी मैं लिखूँ और दस्तख़त भी मैं करूँ। कहो तो शादी भी मैं ही कर लूँ तुम्हारी बजाये ?"

"क्या मतलब ?"

"इकबाल को ख़त लिखा है मैंने तुम्हारी तरफ से। लो करो दस्तख़त।"

सुरैया ने ख़त लेकर फाड़ दिया और बोली—

"तुम अपनी हरकतों से बाज नहीं आओगी ?"

"क्या f. या मैंने ?"

"फिर यह भी पूछती हो ?......अपनी तरह तुमने मुझे भी बेशरम समझ रखा है ? खबरदार, जो इस क़िस्म का मज़ाक आइन्दा किया तुमने। सुरैया हूँ। मज़ाक में भी इन बातों को सहन नहीं कर सकती। इस सिलसिले में मैं तुमसे ख़फा हुई तो फिर कभी न मनूँगी, चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाये।"

ज़ुबैदा की आँखों में बात का बतंगड़ बनते देखकर आँसू आ गये। और वह चुपचाप चली गई।

१२

रात को इकबाल दिलावर के घर पहुँचा। उस समय वह शराब पिये हुए था, आँखें लाल भबूक, लेकिन होश में था। इकबाल को देखकर वह मुस्कराया। इस मुस्कराहट में बड़ी कड़वाहट थी। उसने व्यंगमिश्रित स्वर में कहा—

"हम ग़रीबों पर यह मेहरबानी कैसी हो गई सरकार ? ख़ुद क्यों आये ? हमें याद कर लिया होता।"

"एक ही बात है, मैं आगया तो, तुम चले आते तो !"

"कहिये क्या हुकम है डाक्टर साहब ?"

"हुकम काहे का ? कुछ बातें करनी थीं तुम से !"

"फरमाइये ?······लेकिन मैं समझ गया।"

"तुम ठीक कहते हो। मैं चाहता हूँ कि हमारा राज़ तुम्हारी ज़बान तक कभी न आये।"

दिलावर ने एक क़हक़हा लगाया।

"मैं जानता था आप आयेंगे। आपकी क़ीमती बातें सुनने का मैं मुश्ताक था।"

"ठीक है, तुम जो क़ीमत चाहो, मिलेगी !"

दिलावर फिर हँसा।

"जैसा कीमती राज़ है, वैसी कीमत भी होनी चाहिए। वरना यह याद रखिये कि मेरे मुँह का एक बोल हमीदा की नाक कटवा देगा। आपको निक्कू कर देगा। और नवाब साहब को मुँह दिखाने के क़ाबिल

न रखेगा—समझ गये आप ? हाँ, खूब अच्छी तरह समझ लीजिये !"

"समझ लिया मैंने। तुमने जो कुछ कहा सच कहा; मैं तुम्हें मुँह माँगी कीमत देने को तैयार हूँ।"

"हाँ क्यों न हो, आखिर नवाब के बेटे हो !"

"नहीं, यह तो कोई बात नहीं; लेकिन मैं तुम्हें खुश कर दूँगा।"

यह कहकर इकबाल चला, दिलावर ने कहा—

"आप चले कहाँ ?"

"अब जाता हूँ।"

"बेकीमत दिये ? बगैर मुझे खुश किये ?"

"तुम यक़ीन रखो दिलावर !"

"यक़ीन काहे का सरकार ! क्या खूब सौदा नगद है, इस हाथ दे उस हाथ ले। लाइये क्या देते हैं आप ?"

इकबाल ने तनिक कटुता से कहा—

"तुम तो सौदा करने पर तुले हुए हो ?"

"तो आप किसलिये आये थे ?"

"मामला मैंने तय कर लिया अब मुझ पर छोड़ दो।"

"यानी फिर कभी ?—न साहब यह नहीं होगा। कीमत रखिये और तशरीफ ले जाइए। वरना फिर मैं जिम्मेदार नहीं।"

इकबाल सोच में पड़ गया। वह अपने साथ जितना रुपया लाया था, सब देहात के ग़रीबों पर खर्च कर चुका था। इसने और रुपया मँगवाया था और वह दो-एक रोज़ में आने वाला था। उस समय उसकी जेब में सौ रुपये का एक नोट पड़ा था। वही उसने दिलावर की तरफ बढ़ा दिया। दिलावर ने नोट ले लिया। और वापस कर कहा—

"बस ?"

"नहीं भाई, बस कहाँ ? इस वक्त यही रक़म थी वह दे दी। घर से रुपये मँगवाये हैं, आज-कल में आजायेंगे; फिर और ले लेना।"

"अपन उधार नहीं करते डाक्टर साहब ! एक हज़ार से एक पाई

कम न लूँगा और यह सौ का टुकड़ा अलग। अगर मंजूर हो तो सौदा कीजिये, वरना आप अपने रास्ते, बन्दा अपने रास्ते !'

इकबाल ने कहा--

"नाराज़ क्यों होते हो भाई। एक हज़ार ले लेना, अब तो खुश हो ?"

"लेकिन कब ले लेना ?"

"कह तो रहा हूँ कि आज ही कल में रुपया आने वाला है।"

"हम उधार नहीं करते डाक्टर साहब ! यह नहीं होगा !"

"तो इस वक्त कहाँ से लाऊँ ? यहाँ कोई कर्ज भी तो नहीं दे सकता।"

"क्यों नहीं दे सकता, चौधरी साहब से कहिये। वह बन्दोबस्त कर देंगे।"

"कैसी बातें करते हो दिलावर ; मैं उनसे कह सकता हूँ भला !"

"यह तो मैं भूल ही गया था। आपका उनका रिश्ता ही शरम का है।"

इकबाल ये कड़वी-कुसैली बातें सुनकर बराबर सहन से काम ले रहा था। उसने कहा--

हाँ भई ; तो दो दिन के लिये तुम मेरा यक़ीन न करोगे ?"

"और हर मामले में कर लूँगा ; लेकिन इस मामले में मजबूर हूँ।"

"फिर क्या किया जाये ? रुपये तो मेरे पास नहीं।"

"यह भी खूब रही। बेज़र इश्क टें, टें। आखिर किस बरते पर आप अपना राज़ ख़रीदने आये थे मेरे पास ?"

इकबाल ने खाली होने के बावजूद एक बार फिर जेब टटोली और उसे खाली पाकर, वह अँगूठी दिलावर के हाथ में रख दी जो उसे सुरैया ने तोफे के तौर पर दी थी। दिलावर उसे उलट-पुलटकर देखने लगा। इकबाल ने कहा--

"इसे मामूली न समझना ; यह हज़ारों का माल है।"

दिलावर ने उसे उलट-पुलटकर देखा और जेब में रख लिया। इकबाल ने कहा--

"इसे बतौर अमानत छोड़े जाता हूँ। दो-एक दिन के बाद रुपये

देकर ले लूँगा।"

"यह मेरे किस काम की? जिस दिन रुपये आयें, उसी दिन ले जाइये। वरना यही अँगूठी लेकर पहुँचूँगा नवाब साहब के दरबार में, समझे?"

"खूब अच्छी तरह समझ गया, अच्छा अब जाता हूँ।"

दिलावर ने जेब से शराब का अद्धा निकाला और बोला—

"और आपकी क्या खातिर करूँ? यह दाल-दलिया हाज़िर है।"

"शुक्रिया; शौक़ कीजिये।"

इकबाल चला गया और दिलावर ने एक ही घूँट में अद्धा साफ़ कर दिया।

१३

जमालपुर की स्थिति सुधर चुकी थी। बीमारी समाप्त हो चुकी थी। इकबाल निश्चय कर रहा था कि शहर वापस चला जाये। लेकिन हमीदा का आकर्षण उसके पाँव की जंजीर बन जाता था। उसकी समझ में नहीं आता था कि क्या करे? अब अकारण ही उसका जमालपुर रहना अनुचित था। शहर वापस जाता तो हमीदा के बिना जीवन नीरस बन जाता। चौधरी साहब उससे इतने प्रभावित हो चुके थे कि उसका विवाह तुरन्त हमीदा से कर देते। लेकिन क्या नवाब साहब अनुमति देंगे? क्या बेगम साहिबा राजी हो जायेंगी? जुबैदा तो मेरा मजाक नहीं उड़ायेगी? सुरैया बेगम तो मेरी इस क्रिया को सज्जनता के विपरीत कल्पित नहीं करेंगी? दिन इसी अन्तर्द्वन्द्व और रात इसी चिन्ता में बीतती थी। मगर इसका कोई समाधान समझ में नहीं आता था। दिलावर की घटना के बाद इकबाल ने हमीदा से मिलना कम कर दिया था। और अब वह सोच रहा था कि कुछ समय के लिए शहर चला जाये। दिलावर की रक़म अदा करके अँगूठी वापस ले ले तथा फिर वायु-परिवर्तन के बहाने से कुछ दिन के लिये जमालपुर आकर रहे।

रात को वह यही कार्यक्रम बनाकर सोया। सुबह को आँख खुली तो ज्वर से पीड़ित था। उसका नियम था कि वह प्रातःकालीन आहार चौधरी साहब के पास करता था। आज इतनी देर हो गई वह नहीं आया। हमीदा मन ही मन बल खा रही थी। और चौधरी साहब स्पष्टतः चिन्तित दृष्टिगोचर हो रहे थे। आखिर उन्होंने कहा—

"आज इकबाल मियाँ नहीं आये ?"

"जी नहीं आये।"

"चली जा बेटी, जरा देख आ !"

बिल्ली के भागों छींका टूटा। वह नाश्ते का सामान यूँ ही छोड़-छाड़कर इकबाल की मंजिल की तरफ लपकी। इकबाल अर्द्धमूछित ज्वर में पड़ा है। उसने नब्ज टटोली, माथा देखा, शरीर पर हाथ रखा, दिल की धड़कन सुनी, आवाज दी। कुछ जवाब न पाकर उलटे पाँव सहमी हुई, घबराई हुई वापस आई। बाप ने इस रंग में उसे परेशान देखकर कहा—

"क्या हुआ बेटी ?"

हमीदा की मादक आँखों में आँसू छलक रहे थे। वह और घबरा गया। उसने व्याकुलता के साथ कहा—

"क्या हुआ बेटी ! तू रो क्यों रही है ? क्या दिलावर मिल गया था रास्ते में ?"

वह भड़की हुई आवाज में बोली—

"नहीं।"

"फिर क्या हुआ ? कहती क्यों नहीं ?"

"वह बीमार हैं।"

"कौन, इकबाल ?"

"हाँ, बुखार में लत-पत पड़े हैं। तन-बदन की ख़बर नहीं। मैंने पुकारा, जवाब नहीं दिया ; जिस्म पर हाथ रखा जैसे आग !"

चौधरी अमजदअली के हाथों के तोते उड़ गये। यह सुनकर नाश्ता छोड़-छाड़ तुरन्त इकबाल के पास पहुँचे। हमीदा भी उनके पीछे-पीछे मौजूद थी। उन्होंने इकबाल को देखा और समझ गये कि प्लेग का हमला है। वह स्वयं भी इस रोग के रोगी रह चुके थे, तथा सैकड़ों रोगियों को देखकर इसके चिह्नों को देख चुके थे। उनका हाथ नब्ज की बजाये पहले गिल्टी पर गया। उसे देखते ही उन्हें स्थिति की गम्भीरता का आभास हो गया। इतने में गाँव के और भी बहुत से लोग आ मौजूद

हुए थे। कौन था जो इकबाल का कृतज्ञ और आभारी न हो? जिसके लिये इकबाल ने कष्ट न उठाया हो? चौधरी साहब ने एक दृष्टि उपस्थित लोगों पर डाली। फिर कल्लू से मुख़ातिब होकर कहा—

"अबे देखता क्या है? जा सामने वाले गाँव से वैद्यजी को बुला ला।"

कल्लू हवा के घोड़े पर सवार होकर चला गया। फिर उन्होंने शेरखाँ से कहा—

"भाई देख रहे हो क्या हालत है? वैद्यजी आते होंगे यह सच है। लेकिन इसकी ख़बर फ़ौरन नवाब साहब को होनी चाहिए।"

"चला जाऊँ चाचा?"

"हाँ बेटा फ़ौरन।"

शेरखाँ ने अपना डंडा सँभाला और तीर की तरह शहर रवाना हो गया।

नवाब साहब इत्मीनान से अपने दीवानखाने में बैठे शतरंज खेल रहे थे। यकवयक शेरखाँ पहुँचा, चेहरा मिट्टी से अटा हुआ, परेशानी चेहरे से स्पष्ट। नवाब साहब ने निगाह उठाकर उसकी तरफ़ देखा।

"तुम कौन हो?"

"हजूर की रैयत हूँ सरकार।"

"कहाँ से आये हो?"

"जमालपुर से।"

जमालपुर का नाम सुनकर नवाब साहब चौंके। शतरंज से मुँह मोड़कर बिल्कुल शेरखाँ की तरफ आकृष्ट हो गये।

"ख़ैरियत? चौधरी अमजदअली अब कैसे हैं?"

"बिल्कुल अच्छे सरकार—लेकिन······?"

"कहो; क्या कहते हो?"

"लेकिन उनको अच्छा करने वाला बीमार पड़ गया, हजूर!"

"तुम इकबाल को कह रहे हो?"

"जी हजूर!"

"(घबराकर) इकबाल बीमार है ?"

"जी सरकार !"

नवाब साहब उठ खड़े हुए।

"बुख़ार है उसे ?"

"बड़े ज़ोर का सरकार।"

"तुम उसे यहाँ क्यों न ले आये ?"

"इसीलिये तो आया हूँ सरकार ! मोटर ले चलिये।"

"ठीक है, मैं चलता हूँ, मैं खुद उसे जाकर लाऊँगा। तुम ठहरो।"

शेरखाँ पूर्ववत् खड़ा रहा। नवाब साहब ज़नानख़ाने में पहुँचे। इस समय सुरैया बेगम के पास मौजूद थी। और ज़ुबैदा पूर्व की नाईं हँस-हँसकर बातें कर रही थी। नवाब साहब का उतरा हुआ चेहरा देखकर बेगम साहिबा घबरा गईं।

"इलाही खैर ; क्या हुआ ? परेशान क्यों हो ?"

वह बात को टालते हुए बोले—

"कुछ नहीं।"

"फिर यह चेहरा उतरा-उतरा क्यों है ?"

"जमालपुर से आदमी आया है।"

"ए मैं कुरबान ! मेरा इकबाल आ गया ?"

"नहीं—उसी को लेने जा रहा हूँ।"

"तुम लेने जा रहे हो ? वह खुद क्यों नहीं आ गया ?"

"वह बीमार है !"

यह सुनते ही सुरैया सफेद पड़ गई। ज़ुबैदा का हँसना बन्द हो गया। बेगम साहिबा लड़खड़ा गईं।

"इकबाल के दुश्मन बीमार हैं, यह किसने कहा ?"

"आदमी आया है।"

"आदमी आया है ?—क्या उसकी तबीयत ज्यादा ख़राब है ?"

"हाँ, यही मालूम होता है।"

"हाय मेरे अल्ला ! तो फिर क्या होगा ? डाक्टर को क्यों नहीं भेजते ? उसे बुला क्यों नहीं लेते !"

"दोनों काम कर रहा हूँ। डाक्टर यहीं आकर उसे देखेगा। मैं अभी लाता हूँ उसे। तुम उसका कमरा साफ़ कर दो।"

सुरैया झपक उठी, तेज़ी से इकबाल के कमरे में पहुँची और उसकी सफाई में लग गई। थोड़ी देर में उसने कमरे को शीशा बना दिया। जुबैदा भी कुछ देर के बाद आगई। वह भी उसका हाथ बँटाने लगी। बेगम साहिबा गिड़गिड़ाकर खुदा से दुआएँ माँगने लगीं।

नवाब साहब शीघ्रातिशीघ्र एम्बुलैंस कार लेकर जमालपुर पहुँचे। इकबाल मंजिल में देहातियों का विशाल समूह था। वह अपने प्रिय और संरक्षक के प्रति व्याकुल थे। एक दिलावर था जो अलग कोने में खड़ा इकबाल की दशा और लोगों की स्थिति देखकर मुस्करा रहा था। चौधरी साहब उसकी पट्टी से लगे बैठे थे। वैद्यजी आ गये थे तथा वह औषधियाँ निश्चित कर रहे थे। एक कोने में चुपचाप हमीदा खड़ी हुई थी। इतने में नवाब साहब आगये। उन्हें देखकर जन-समूह काई की भाँति फट गया। सब लोग उन्हें झुक-झुक सलाम करने लगे। उन्होंने किसी की तरफ़ न देखा। सीधे इकबाल की रोग-शैया पर पहुँचे और चौधरी से पूछा—

"क्या हाल है अब ?"

"वही हाल है हजूर, देख लीजिये।"

वैद्यजी ने कहा—

"घबरायें नहीं सरकार ! राम भली करेगा।"

नवाब साहब ने इकबाल के शरीर पर हाथ रखा जो अब तक तप रहा था। फिर चौधरी से कहा—

"मैं मोटर लाया हूँ, इकबाल मेरे साथ जायेगा।"

लोगों ने हाथोंहाथ स्ट्रेचर पर लिटाकर एम्बुलैंस कार तक पहुँचाया और नवाब साहब अपनी अमानत अपने साथ लेकर चल दिये।

हमीदा अब तक एक कोने में खड़ी थी। उसकी आँखों में दो जगमगाते हुए मोती चमक रहे थे और वह भागती हुई मोटर की तरफ़ देखे चली जा रही थी।

१४

इकबाल के जाने के बाद, पकरिया के पेड़ के नीचे चौधरी साहब चौधरी बनकर बैठ गये। गाँव के कुछ लोग उनके इर्द-गिर्द खड़े थे, कुछ बैठे थे। इकबाल से सम्बन्धित बातें छिड़ गईं। चौधरी साहब ने कहा—

"कितना शरीफ़ और होनहार लड़का था!"

कल्लू ने कहा—

"क्या करें चाचा, ऐसा आदमी हमने तो देखा नहीं आज तक।"

शेरखाँ बोले—

"वह आदमी कब था! फरिश्ता था फरिश्ता!"

एक आवाज़ आई—

"अच्छा हो जाये खुदा करे बेचारा।"

दूसरा बोला—

"हाँ, खुदा करे जल्द अच्छा हो जाये। हम सबके लिये उसने अपनी जान खतरे में डाल दी।"

यहाँ ये बातें हो रही थीं। दिलावर मैदान खाली देखकर चौधरी के घर पहुँचा। आतुर और उदास हमीदा इकबाल की याद में मछली की तरह तड़प रही थी तथा आँखों से आँसू बहा रही थी। उसने दिलावर को घृणित दृष्टि से देखा और बिगड़कर बोली—

"तुम! तुम यहाँ क्यों आये?"

दिलावर की आँखें भीग गईं।

"तेरा दुख बाँटने आया हूँ हमीदा।"

"मुझे किसी साथी की ज़रूरत नहीं। फ़ौरन चले जाओ; वरना अच्छा न होगा।"

"जाता हूँ, मगर मुझ से तेरा यह हाल नहीं देखा जाता। तू रो-रोकर हल्कान क्यों हो रही है? खुदा जो करता है, अच्छा ही करता है। बेचारा गाँव वालों का दुख बाँटने आया था, खुद ही उसका शिकार हो गया। मैं तो उसकी पट्टी से रात भर लगा बैठा रहा। बेहोशी में भी अगर उसके मुँह से कोई लफ़्ज़ निकलता था, तो बस एक हमीदा नाम और कुछ नहीं।"

हमीदा का गुस्सा ख़त्म हो गया। वह इस डाकू को भी अपना मित्र समझने लगी। उसने अपनत्व के स्वर में पूछा—

"मुझे याद कर रहे थे?"

"हाँ, बहुत।"

"क्या कहते थे?"

"कहते क्या, बस जहाँ ज़रा आँख खुली, हमीदा-हमीदा पुकारने लगते; फिर बेहोश हो जाते थे।"

हमीदा अपना ज़िक्र और इकबाल की यह हालत सुनकर रोने लगी। दिलावर ने उसे तसल्ली देते हुए कहा—

"घबराती क्यों हो? अच्छे हो जायेंगे। शहर गये हैं, वहाँ एक से एक डाक्टर भरा पड़ा है। देखना कल ही ख़बर आती है कि अच्छे हो गये।"

"खुदा करे···लेकिन बाबा कह रहे थे कि प्लेग है।"

"तो इससे क्या होता है? बाबा को भी तो था, अच्छे हो गये कि नहीं?"

हमीदा ने रोते-रोते बड़ी मासूमियत और भोलेपन से कहा—

"मैं पहुँची तो बेहोश हो चुके थे। एक बात भी मुझसे न कर सके वह!"

दिलावर ने फिर दिलासा दिया—

"तुझसे बात नहीं की, मुझसे तो की।"

हमीदा ने समूर्त उत्सुकता बनकर पूछा—

"तुमसे बातें कीं ?"

"हाँ, बहुत सारी।"

"क्या-क्या ?"

"यह न पूछो।"

"बताओ तो ! बता दो दिलावर।"

उस पगले को तुम्हारे सिवा याद ही क्या था ?"

हमीदा फिर रोने लगी।

"मुझे मालूम होता तो मैं भी रात भर उनकी पट्टी से तुम्हारी तरह लगी बैठी रहती। उन्हें पानी पिलाती, दवा देती, आराम पहुँचाती, मैं कितनी बदक़िस्मत हूँ !"

दिलावर ने स्नेहसने स्वर में कहा—

"बावली कहीं की···तू नहीं थी, मैं तो था। मैंने कोई कसर उठा न रखी। रामनगर से जाकर अर्क़ लाया रातों रात······छः कोस है छः कोस !"

"तुम इतने अच्छे आदमी हो दिलावर, मैं तुम्हें ऐसा न समझती थी।"

"तुम मुझे अभी बिल्कुल न समझी, लेकिन मुझे इसकी परवाह नहीं।"

"माफ़ करदो मेरी ख़ता, मैंने तुमसे बहुत बुरा सलूक किया।"

"देखा जायेगा, छोड़ो इन बातों को। मैंने जो कुछ किया अपना फ़र्ज समझकर किया। तुमसे शाबाशी लेने के लिये नहीं।"

हमीदा ने श्रद्धा की दृष्टि से दिलावर को देखा और ख़ामोश हो गई। दिलावर ने कहा—

"वह आदमी नहीं फरिश्ता था। गाँव के लिये उसने अपने आपको बेकल कर दिया। किसी के दर्द हो, वह बेक़रार हो जाता था। किसी के फाँस चुभे, वह बेकल हो जाता था। ऐसा आदमी बीमार होता और

मैं घर बैठा रहता ! क्या तुम मुझे इतना कठोर समझ बैठी हो ?

हमीदा अब ख़ामोश रही और दिलावर ने कहा—

"हाँ, ख़ूब याद आया, लो यह अँगूठी ।"

दिलावर ने अँगूठी हमीदा की तरफ़ बढ़ा दी । हमीदा ने झिझककर उसे ले लिया और उलट-पुलटकर देखने लगी । यह इकबाल की थी । उसकी उँगली में अकसर देख चुकी थी । देखते ही पहचान गई, बोली—

"यह तो उनकी है ।"

"हाँ उन्हीं की, मैं कब कहता था मेरी है ?"

"तुम्हारे हाथ कैसे लगी ?"

"जाते-जाते दे गये हैं ।"

"इनाम ?"

"नहीं पगली—तेरे लिये ।"

"मुझे दे गये हैं ?"

"हाँ, हाँ—बुखार जब बढ़ा तो समझ गये अब नवाब साहब आयेंगे और ले जायेंगे । मुझे कहने लगे, 'भैया दिलावर यह मेरी अमानत अपने पास रख लो । और जब मैं चला जाऊँ तो इसको हमीदा को दे देना । —हमीदा की उँगली में अपने हाथ से पहना देना', बढ़ाओ हाथ इधर।"

हमीदा ने एक बेबस मामूल की तरह अँगूठी और उँगली दिलावर की तरफ बढ़ा दी । उसने अपने हाथ से उसे पहना दी और बोला—

"अब जाके बोझ हल्का हुआ मेरे दिल का—देख हमीदा, इस तोफ़े को भूल न जाइयो !"

वह प्रणय-अभिभूत होकर बोली—

"नहीं, इसे भूल नहीं सकती । इसे अपनी जान के साथ रखूँगी । जान से ज्यादा अज़ीज समझूँगी ।"

"मुझे यही उम्मीद थी—अच्छा बड़ी देर हो गई, अब जाता हूँ, सोचता हूँ कल शहर जाऊँ और देख आऊँ जाकर इकबाल भैया को, जी लगा हुआ है ।"

हमीदा ने कहा—

"हाँ, जरूर, और वहाँ से आना तो सीधे मेरे पास आना। पहले मुझ से कह देना, तब किसी और से कहना। शायद वह मुझसे कुछ और भी कहलवायें। देखो, जो कुछ वह कहें याद रखना, भूल न जाना।"

दिलावर ने एक क़हक़हा लगाया—

"भूल जाऊँगा ? मैं कोई बात नहीं भूलता। जो कुछ वह कहेगा, एक-एक बात तुझसे कह दूँगा आकर—लेकिन चौधरी चाचा ने देख लिया तो ? उन्होंने तो मुझे मना कर रखा है कि घर में कदम न रखना।"

"वह कुछ नहीं कहेंगे। मैं उन्हें समझा दूंगी।" हमीदा बोली।

वह जाने लगा तो हमीदा ने कहा—

"चाय पिओगे ?"

"अब नहीं, बहुत देर हो गई है।"

"अच्छा तो पान खालो।"

"हाँ, पान खाऊँगा, लाओ।"

हमीदा ने बड़े चाव से पान बनाया और दिलावर की तरफ बढ़ा दिया। इतने में कुछ आहट हुई। दिलावर जल्दी से सटक गया और हमीदा किसी तरफ़ आकृष्ट हुए बग़ैर अपने घर के काम में लग गई।

१५

◇◇◇

इकबाल अर्द्धमृत अवस्था में महलसरा में लाया गया। उसका यह हाल देखकर बेगम साहिबा डाड़े मारकर रोने लगीं।

"हाय मेरे बच्चे को किसकी नज़र खा गई ? मैं सदक़े।"

नवाब साहब ने कहा—

"यह रोने का वक्त नहीं, मरीज को सँभालने का वक्त है। हिम्मत से काम लो। तुम इसे सँभालो, मैं डाक्टर की फ़िक्र करता हूँ।"

सुरैया, इकबाल के साथ-साथ उसके कमरे में पहुँची और उसकी सेवा-शुश्रूषा में लग गई। बेगम तो केवल रो रही थीं, ज़ुवैदा पर समस्त घर का प्रबन्ध आन अड़ा था। और सुरैया दत्तचित्त होकर इकबाल की सेवा-शुश्रूषा में संलग्न हो गई थी।

थोड़ी देर में डाक्टरों का ताँता लग गया। एक से एक बेहतर डाक्टर मौजूद। सबने अत्यन्त सावधानी से इकबाल का निरीक्षण किया और फैसला किया, मर्ज़ ने काफी ताक़त से हमला किया है, लेकिन सेवा-शुश्रूषा अच्छी हो गई तोख़ तरा टल जायेगा।

डाक्टर इन्जेक्शन देकर नुस्खा लिखकर चले गये।

जाते-जाते एक डाक्टर ने कहा—

"बेहतर हो अगर इन्हें नर्सिंग होम भेज दीजिये।"

सुरैया बीच में बोल पड़ी—

"जो आराम घर पर मिल सकता है, वह नर्सिंग होम में नहीं मिल सकता।"

डाक्टर ने कहा—

"तो फिर दो नर्सें निर्धारित कर दीजिये। वह बारी-बारी दिन-रात तीमारदारी करती रहेंगी।

इससे पूर्व कि नवाब साहब कुछ जवाब देते, सुरैया फिर बीच ही में बोल पड़ी। उसने कहा—

"नर्सों की भी जरूरत नहीं अब्बा हजूर! मैं और जुबैदा अच्छी तरह नरसिंग कर लेंगी।"

डाक्टर साहब अपना सा मुँह लेकर चले गये। नवाब साहब ने भी मानों सुरैया की राय का समर्थन कर दिया और वह बाहर चले गये।

सुरैया ने सारी रात आँखों में काट दी। घड़ी की सुइयाँ घण्टे बदलती रहीं, लेकिन सुरैया अपनी जगह से न टली। वह रात भर पट्टी से लगी बैठी रही। कभी वह थर्मामीटर से बुखार का अनुपात लगाती, कभी नाड़ी टटोलती, कभी तलुए सहलाकर बुख़ार को कम करने की कोशिश करती। कभी कम्बल ओढ़ाती, कभी दवा पिलाती, अन्ततोगत्वा सारी रात उसने यों ही काट दी।

निरन्तर चौबीस घण्टे गुज़र गये। सुरैया चट्टान की तरह अपनी जगह जमी हुई थी। वह पलक झपकाना भी पाप समझती थी। बेगम साहिबा भी बार-बार आती थीं। दुआएँ पढ़-पढ़कर दम करती थीं। जुबैदा भी रात में कई बार आई और ड्यूटी बदलने की कोशिश की, मगर सुरैया ने जरा भी ध्यान न दिया, कोई बात न मानी। उसने जुबैदा को भेज दिया और खुद सेवा-शुश्रूषा करती रही। जुबैदा ने एक बार जलकर कहा—

"इकबाल तो अच्छे हो जायेंगे तुम मर जाओगी इस तरह।"

सुरैया ने उसे तिरछी निगाहों से देखकर कहा—

"मरने दो, हमी तो मरेंगे ; तुम्हें क्या ?"

वह चली गई और सुरैया फिर अपने प्रेमी के काम में संलग्न हो गई। जब इस तरह काफ़ी समय बीत गया तो बेगम साहिबा आयीं।

उन्होंने वात्सल्य का परिचय देते हुए सुरैया के सर पर हाथ रखा और कहा—

"क्या अपनी जान देगी बेटी ?"

"अच्छी तो हूँ अम्मी हुज़ूर।"

"बस, तूने बहुत काम कर लिया ; अब जा आराम कर।"

"नहीं अम्मा, मैं बड़े आराम से हूँ।"

"तुम थक गई हो बेटी।"

"जी नहीं, ज़रा भी नहीं थकी।"

"कहना मान लो अपनी माँ का, जिद नहीं करते ; शाबाश ! कुछ देर मुझे भी तो बैठने दो। फिर जुबैदा आयेगी। उसे भी यह काम करना चाहिए। हम दोनों जब चले जायें तो फिर चली आना। शाबाश, मेरी अच्छी लड़की नहीं ?"

अब सुरैया मजबूर हो गई और विवश होकर अपने कमरे में चली गई। जब वह जाने लगी तो बेगम ने ममता से बेक़ाबू होकर कहा—

"बेटी, रात से तुमने कुछ खाया नहीं।"

"भूख नहीं लगी अम्माँ। खा लूँगी, आप फ़िक्रमन्द न हों।"

इतने में जुबैदा आ गई। बेगम ने उससे कहा—

"देखती हो जुबैदा ? यह सारी रात जागी है। खाना भी नहीं खाया इसने। मैं यहाँ बैठी हूँ ; तुम इसे कुछ खिलादो।"

"बहुत अच्छा खालाजान।"

कहकर जुबैदा कमरे से निकल गई और सुरैया अपने कमरे में आ गई। यहाँ जा-नमाज़ बिछी हुई थी। सुरैया ने वज़ू किया और दुआ माँगने लगी—

"या अल्ला ! अगर जान का सदका जान है तो मेरी नाचीज़ जान हाज़िर है।"

वह दुआ माँगकर मसल्ले से उठ रही थी कि जुबैदा चाय और बिस्कुट लेकर आगयी।

"लो जरा सा खा लो।"

सुरैया ने कोई जवाब नहीं दिया। चाय की प्याली हाथ में लेकर बैठने लगी।

जुवैदा ने कहा—

"और बिस्कुट ?"

"बिस्कुट नहीं सिर्फ चाय पीऊँगी।"

"यह क्यों ?"

"तबीयत ज़रा भारी है ; ऐसे में चाय काफ़ी है।"

जुवैदा उसके स्वभाव को भली भाँति जानती थी। वह सुरैया की मनःस्थिति को खूब अच्छी तरह अनुभव कर रही थी। वह जान रही थी कि इस समय सुरैया को छेड़ना खतरनाक है। पदार्थ तैयार है फट पड़ेगा। वह सुरैया की स्थिति जानकर की अनजान बनी हुई थी। वह हृदय से उसे प्यार करती थी। मन में उसका हाल देख-देखकर कराह रही थी। लेकिन जिह्वा पर एक शब्द तक न लाती थी। जब सुरैया ने बिस्कुट खाने से इन्कार कर दिया तो उसे बहुत पीड़ा हुई। लेकिन जानती थी—जिद्दी लड़की है। हरगिज़ कहा नहीं मानेगी। चुप हो रही।

जब सुरैया चाय पी चुकी तो जुवैदा चुपके से उठी। उसने हाथ पकड़कर सुरैया को बिस्तर पर लिटा दिया। चादर ओढ़ाकर कहा—

"अब जरा देर तुम सो रहो। दिन को तो मैं और खाला इकबाल की देखभाल कर लेंगे। रात भर तुम्हीं को जागना है।"

जुवैदा ने ये शब्द यों कहे मानों इनमें कोई स्वाभिमान की बात नहीं है। इनमें व्यंग और छेड़छाड़ नहीं है। सहानुभूति और सान्त्वना भी नहीं थी। अनमने भाव से कर्त्तव्य-पूर्ति का मात्र संकेत था। प्रभाव अच्छा पड़ा। सुरैया ने मौनता से जुवैदा की बात मान ली और चुपचाप लेट गई तथा थोड़ी देर में सो गई।

जुवैदा उसकी यह हालत एक कुर्सी पर बैठी देख रही थी, लेकिन

बिल्कुल अनजान बनी हुई थी। थोड़ी देर के बाद वह उठी; सुरैया के समीप गई। चादर उठाकर चेहरा देखा—मुँह उतरा हुआ, गालों पर आँसुओं के बहने के निशान थे। लेकिन वह बेख़बर सो रही थी। सुरैया की जुबैदा ने झुककर पेशानी चूमी और कमरे से बाहर निकली चली गई। उसकी आँखों में इस समय आँसू झलक रहे थे। लेकिन वह उन्हें आँखों की क़ैद में रोकने का प्रयास कर रही थी। वह सोच रही थी—इस सुरैया का अन्त क्या होगा? यह किस तरफ़ जा रही है?

१६

दो सप्ताह की अविरल चिकित्सा एवं सेवा-शुश्रूषा के बाद इकबाल की स्थिति उन्नत हुई। इसी बीच अनेक बार उसके जीवन से डाक्टर, हकीम, नवाब साहब, बेगम साहिबा और ज़ुबैदा को निराशा हुई; लेकिन सुरैया आशा और निराशा से विमुख, इस बात से अनभिज्ञ, इकबाल की सेवा-शुश्रूषा में लगी हुई थी। उसने अपने को इसी कार्य के प्रति समर्पित कर दिया था। न वह थकन अनुभव करती थी, न परेशानी। खाना मिला तो खा लिया, अवसर मिला तो ज़रा आँख झपका ली। वरना वह थी और इकबाल !

आज इकबाल की तबीयत और ज़्यादा अच्छी थी। वह एक आराम-कुर्सी पर कम्बल लपेटे हुए बैठा सिगरेट पी रहा था। सामने कुर्सी पर सुरैया बैठी थी। नौकरानी चाय लेकर आयी। सुरैया चाय बनाने लगी। इकबाल प्यारभरी नज़रों से सुरैया को देख रहा था, उसे मालूम था कि सुरैया ने किस हिम्मत और तत्परता से उसकी चिकित्सा और सेवा-शुश्रूषा की है। सुरैया ने चाय की प्याली उसकी तरफ़ बढ़ाई। वह एक-एक घूँट करके पीने लगा। सुरैया ने चाय की प्याली अपने लिये भी बनायी और वार्तालाप का प्रारम्भ किया—

"अब तो आपकी तबीयत बिल्कुल ठीक है ?"

"जी हाँ, ख़ुदा का शुक्र है, अब अच्छा हूँ।"

वह मुस्कराकर बोली—

"यहाँ तो लोग आपकी ज़िन्दगी से मायूस हो चुके थे।"

उसने एक ठंडी साँस लेकर कहा—

"सच पूछिये तो मुझे नयी ज़िन्दगी मिली है—और यह नयी ज़िन्दगी आपने मुझे दी है !"

वह आश्चर्य से बोली—

"मैंने ? यह आप क्या कह रहे हैं ?"

"जी हाँ आपने—मेरा रुआँ-रुआँ आपके एहसान से दबा हुआ है। काश ! मेरी यह नाचीज़ ज़िन्दगी आपके किसी काम आ सकती !"

सुरैया ने नम्रता और गम्भीरता से कहा—

"आप तकल्लुफ़ में बहुत बढ़ते जा रहे हैं।"

इकबाल ने जवाब दिया—

"तकल्लुफ़ नहीं करता, वाक़ा अर्ज़ करता हूँ। ज़िन्दगी की आख़िरी साँस तक आपका एहसान नहीं भूल सकता।"

"मैंने कोई एहसान नहीं किया। इन्सान का फ़र्ज इंसान की ख़िदमत है। और फ़र्ज न शुक्रिया का मुहताज होता है और न इनाम का। ख़िदमत बगैर किसी तमन्ना और गर्ज के होनी चाहिए। फ़र्ज कीजिये, मैं इसी तरह बीमार पड़ जाऊँ, क्या आप मेरी ख़िदमत इसी तरह नहीं करेंगे ?"

"खुदा न करें आप बीमार हों, ऐसी बातें न कीजिये।"

इकबाल बातें कर रहा था और सुरैया की नज़र इकबाल की उँगली में उस अँगूठी को ढूँढ़ रही थी जो उसने तोफ़े के तौर पर उसे दी थी। वह सोच रही थी—मेरी सेवा का इतना आभार है और मेरा दिया हुआ तोफ़ा, जो मैंने बड़े चाव और प्यार से दिया था, इस योग्य भी नहीं था कि सँभालकर रखा जाता ?

और ठीक इसी समय ज़ुबैदा शरारत की पोट बनी, हँसती और मुस्कराती हुई कमरे में प्रविष्ट हुई और उन दोनों से अभिहित होकर चहकने लगी—

"आज तो यहाँ की फ़िज़ा फिर रंगीन दिखाई देती है ?"

सुरैया ने मुस्कराकर कहा—

"क्या मतलब ?"

इकबाल ने कहा—

"आप जहाँ पहुँच जायें वहाँ रंगीनी और मस्ती के सिवा और क्या हो सकता है ?"

"अब ज्यादा बातें न बनाइये। मैं जानती हूँ। आप लोग चाहते हैं, मैं चली जाऊँ। बहुत अच्छा साहब, मैं चली।"

सुरैया ने टोका—

ऐ वाह ! खामख्वाह; आई हो तो बैठो लेकिन आदमी बनकर, हर वक्त शरारत अच्छी नहीं लगती।"

"शरारत का नाम क्यों लेती हो ? 'हर वक्त' को बदनाम न करो। साफ़-साफ़ कहदो, 'इस वक्त' तू अच्छी नहीं लगती; चल भाग यहाँ से। मैं चली जाऊँगी फ़ौरन और क्या ? क्यों हज़रत इकबाल; मैं ग़लत तो नहीं कहती ? सच-सच कहियेगा, मुरव्वत की जिद्द नहीं।"

"सच-सच आप पूछती हैं तो आप बिलकुल ग़लत कह रही हैं।"

सुरैया हँसने लगी—

"अब कहो ?"

ज़ुबैदा कुछ झेंप सी गई। उसने कहा—

"ना बाबा, मैं नहीं बैठती। गुल और बुलबुल का तराना, चकोर और चाँद की बातें, मैं मुई कवाब में हड्डी बनकर क्यों बैठूँ ?"

सुरैया रूठकर बोली—

"तो न बैठो। जाओ, लेकिन जा भी सको किस तरह; न जाती हो, न बैठती हो। खड़े-खड़े सर खा रही हो मुफ़्त में।"

ज़ुबैदा बैठ गई —

"अब तो नहीं जायेंगे; देखें हमारा कोई क्या कर लेता है ?"

वह बैठ गई और एक पुस्तक के पृष्ठ उलटने-पुलटने लगी। इकबाल ने कहा—

"यह लायब्रेरी नहीं है। पढ़ना है तो तशरीफ़ ले जाइये।"

ज़ुबैदा ने कहा—

अब तक तो बुख़ार मुझ ग़रीब पर उतर रहा था। अब किताब पर भी नजला गिरने लगा ?"

सुरैया ने पूछा—

"कौनसी किताब है ?"

"नाम बताऊँगी तो चिढ़ जाओगी।"

इकबाल ने कहा—

"आप तो हवा से लड़ती हैं। किताब के नाम से और चिढ़ने से क्या ताल्लुक़ ? कौनसी किताब है ? जरा हमें भी तो मालूम हो।"

"जी, इस ख़ाकसार का नाम है..."

इकबाल ने फिर टोका —

"ख़ाकसार का नहीं, किताब का नाम दरियाफ़्त किया जा रहा है।"

ज़ुबैदा उठ खड़ी हुई।

"आप लोग यहीं बैठे रहेंगे ; मैं जाती हूँ।"

दरवाज़े पर पहुँचकर उसने कहा—

"इस किताब का नाम है—ज़हरे-इश्क़। मैं इसे पढ़ती हूँ ; आप लोग इसे लिखिये ; आदाब अर्ज़ !"

और वह पुष्प की सुगन्ध की भाँति निकली चली गई।

१७

जब से इकबाल आया था, जमालपुर में उसका कोई पत्र नहीं आया था। कोई समाचार ज्ञात नहीं हुआ। चौधरी अमजदअली ने कई बार शहर जाने का निश्चय किया लेकिन हमेशा कोई न कोई ऐसी रुकावट आगे आ गई कि न जा सके। उड़ती हुई खबर उन्हें यह मिली थी कि अब इकबाल की तबीयत पहले से अच्छी है। लेकिन इससे उनकी तसल्ली न हुई। वह उसका मालिक था। उसने अनथक कोशिश से उनकी चिकित्सा की थी। वह चाहते थे शहर जायें, दो-चार रोज़ उसके पास रहें। मौक़ा मिले तो उसकी सेवा-शुश्रूषा में भाग लें। यही सोचकर उन्होंने आज निर्णय कर लिया था कि अवश्य वह शहर जायेंगे। अपनी आँखों से इक-बाल की दशा देखेंगे। और दो-एक रोज़ उसके पास रहकर वापस आयेंगे। लेकिन उनकी अनुपस्थिति में हमीदा क्या करेगी? इस घर में अकेली कैसे रहेगी? ऐसे मौक़े पर वह कल्लू की माँ को अपना पूरक बना जाते थे। और सच्ची बात तो यह है कि उनकी अनुपस्थिति में वह एक बाप की तरह हमीदा की देखभाल करती थी। न उसे कहीं जाने देती और न स्वयं पल भर को निकलती थी।

चौधरी साहब बने-ठने हमीदा की प्रतीक्षा में चारपाई पर बैठे हुक़्क़ा पी रहे थे। वह उनके आदेशानुसार कल्लू की माँ को बुलाने गई थी। लेकिन सीधी नहीं, डाकखाने होती हुई। जब भी उसे बाहर निकलने का मौक़ा मिलता था, वह एक चक्कर डाकखाने का अवश्य लगाती थी; सम्भवतः, इकबाल का कोई पत्र आया हो। लेकिन वह हमेशा असफल

लौट आती थी। डाकखाने का मुंशी उसे पहचानता था और उसे देखते ही कह देता था—

"नहीं बेटी, आज कोई चिट्ठी नहीं आई।"

वह यह सुनकर जल ही तो जाती थी। उसका जी चाहता था कि वह बूढ़े मुंशी का मुँह नोच ले और इस छोटी सी झोंपड़ी, जिसे लोगों ने डाकखाने का नाम दिया है, आग लगा दे। अगर इकबाल का पत्र नहीं आता तो इस डाकखाने और इस मुंशी की ज़रूरत क्या है ?

यहाँ से निराश होकर वह कल्लू के घर चली। रास्ते में दिलावर मिल गया। एक बड़ी सी ईख हाथ में थी, मुँह से तोड़ता और खाता जाता था। हमीदा को देखकर वह ठनका। हमीदा उसे देखकर रुकी। दोनों आमने-सामने खड़े थे। दिलावर ने पूछा—

"कहाँ जा रही है सवारी सरकार की ?"

किसी और समय दिलावर ने ऐसी शोख़ बात की होती तो वह उसका मुँह झुलसा देती। लेकिन इस समय वह मौन हो गई। वह दिलावर से लड़ना नहीं चाहती थी। उसे अब इतना बुरा भी नहीं समझती थी, जितना पहले ख़्याल करती थी। अब किसी सीमा तक वह उसे अपना हितैषी समझने लगी थी। इसीलिये उसकी बेतुकी बातों को भी सह लेती थी।

"बाबा ने कल्लू की माँ को बुलाया है, वहीं जा रही हूँ।"

दिलावर आगे बढ़ा। हमीदा ने उसे रोका।

"कहाँ चले ? सुनो तो।"

वह रुक गया। हमीदा ने पूछा—

"शहर गये थे ? तुमने वायदा किया था, जाओगे, ख़ैर-ख़बर लाओगे।"

दिलावर सर खुजलाने लगा।

"हाँ भई, वायदा तो किया था, हमने उसे पूरा भी कर दिया, गये थे।"

"कब गये थे ? कब आये ?"

"परसों ही सुबह तो गया था ! और शाम होते-होते आ गया था।"

"और मुझे ख़बर भी नहीं दी ?"

"ख़बर कैसे देता ? घर में आने की मनाही है। रास्ते-गली में तुम मिली नहीं। चौधरी चाचा न जाने कब ख़ुश होंगे और मेरा घर में आना-जाना शुरू होगा।"

"हो जायेगा, मैं कह दूँगी।"

"तुम मुझे तो इत्मीनान दे देती हो, चाचा से कुछ नहीं कहतीं।"

"कह दूँगी, कह दूँगी। हाँ, यह तो बताओ—वह कैसे हैं ?"

"कौन, इकबाल मियाँ ?"

"हाँ वही, और कौन ? बताओ ना ?"

"अच्छे हैं, और कैसे हैं ?"

"तुमसे कुछ बातें हुईं ?"

"हाँ, बहुत सारी।"

"मेरा भी जिक्र करते थे कुछ ?"

"यह लो, और बातें ही क्या हुईं ? जब तक बैठा रहा, तुम्हारा क़लमा पढ़ते रहे।"

"क्या कह रहे थे ?"

"कहते थे, हर वक्त हमीदा की तस्वीर आँखों में फिरती रहती है। अच्छा हो लूँ तो जमालपुर पहुँचूँ और वहीं का हो जाऊँ।"

वह शरमा गई। ज़रा देर चुप रहकर बोली—

"कमज़ोर बहुत हो गये होंगे ?"

"हाँ...कुछ यूँ ही से।"

"तुमने कहा क्यों नहीं, चूज़े की यखनी पिया करें ?"

दिलावर हँसने लगा।

"अब के जाऊँगा तो कह दूंगा।"

हमीदा जाने के लिये आगे बढ़ी और जाते-जाते उसने कहा—

"ज़रूर कहना, भूल न जाना।"

वह चली गई और दिलावर आगे बढ़ा। उसने हमीदा से एक-एक बात झूठ कही थी। वह न शहर गया था और न इकबाल से मिला था। वह तो मात्र उसे बहलावा दे रहा था। उसे विश्वास था—दो-चार रोज़ में हमीदा इकबाल को भूल जायेगी और वह फिर उसको हासिल करने का प्रयत्न करेगा। लेकिन आज की वार्ता से बोध हुआ कि सिर्फ हमीदा न इकबाल को भूली है बल्कि इसकी रग-रग में, नस-नस में वह समाया हुआ है तथा प्यार का रंग कुछ चोखा होता जा रहा है। अगर जल्दी ही ख़बर न ली गई तो मामला हाथ से निकल जायेगा। यह सोचकर वह सीधा चौधरी साहब के घर पहुँचा कि आज फिर उनका दिल टटोले और मौक़ा हो तो उनसे साफ़-साफ़ बात करे। उसे देखते ही चौधरी साहब की त्योरियाँ चढ़ गईं। उन्होंने न उसकी ख़ैरियत पूछी और न उसे बिठाया, हुक्क़ा पीते-पीते पूछा—

"कैसे आना हुआ ?"

"एक बड़े ज़रूरी काम से आया हूँ, चाचा।"

"कहो, क्या काम है ?"

"मैं आज फ़ैसला करने आया हूँ।"

"फ़ैसला ? मुझ से ? मेरा-तुम्हारा झगड़ा क्या है ?"

"झगड़ा तो कुछ भी नहीं और है भी।"

"यह क्या बात हुई ? है भी और नहीं भी। साफ़-साफ़ बात कहो।"

"बात यह है चचा कि अब मैं अपना घर बसाना चाहता हूँ।"

"बड़ा मुबारिक ख्याल है; घर बस जाये तो आदमी बन जाओगे।"

दिलावर ने खुश होकर कहा—

"मैं भी आपका, हमीदा भी आपकी; जब चाहे काज़ी को बुलाकर फ़ैसला कर दीजिये।"

चौधरी साहब ने एक जोरदार कश लगाया और दिलावर की तरफ़ घूरते हुए कहा—

"यह ख्याल अब तक तुम्हारे दिल में बसा हुआ है ?"

"चचा, यह ख्याल तो जान के साथ है, न मैं रहूँगा न यह ख्याल रहेगा।"

"यह ख्याल दिल से निकाल दो, यह अनहोनी बात है। यह कभी नहीं हो सकती।"

दिलावर भी अड़ गया।

"क्यों नहीं? मुझमें कौन से कीड़े पड़े हैं? कौन माई का लाल है जो जमालपुर में मेरा मुक़ाबला कर सके?"

"कोई नहीं? तुम बड़े बहादुर हो, ज़िन्दादिल हो; लेकिन तुम्हारा और हमीदा का जोड़ नहीं।"

"यही तो पूछता हूँ, क्यों नहीं?"

"वह पढ़ी-लिखी है, तुम जाहिल हो। वह नेक और शरीफ़ है, तुम आवारा और बदमाश हो। ख़बरदार! अब यह बात ज़बान पर न लाना।"

"मेरी ज़बान पर ताला कोई नहीं लगा सकता। मैं दिलावर हूँ। मेरे आड़े कोई नहीं आ सकता। मैं हमीदा से शादी करके रहूँगा।"

चौधरी साहब को क्रोध आ गया।

"अबे कल के लौंडे, मुझे धौंस दे रहा है? निकल यहाँ से; ख़बरदार जो अब कभी क़दम रखा इस घर में। नालायक, बदमाश!"

"ज़बान सम्हालकर बात करो बड़े मियाँ! नहीं तो खून की नदियाँ बह जायेंगी यहाँ।"

"अबे कुछ पी के आया है?"

"पीके तो नहीं आया हूँ; लेकिन नशे में हूँ।"

दिलावर ने अपनी अंटी से यह बड़ा चाक़ू निकाल लिया। पीछे हट-कर उसे खोला और चौधरी से कहने लगा—

"बोलो, अब क्या कहते हो? हमीदा से मेरा ब्याह होगा या नहीं?"

"हरगिज़ नहीं।"

"फिर सोच लो चचा!"

"सोच लिया। तू मुझे डराकर काम निकालना चाहता है ? यह नहीं जानता मैं कौन हूँ ?"

"खूब जानता हूँ और इसीलिये आज फ़ैसला करके जाऊँगा। लो सँभलो !"

इससे पूर्व कि चौधरी सँभले, दिलावर के लम्बे चाकू का फल उसकी छाती में प्रविष्ट हो चुका था। वह पीछे के बल चारपाई पर गिरा और एक आह करके हमेशा के लिये ठंडा हो गया। बूढ़ा और कमज़ोर आदमी था। इतना बड़ा घाव, वह भी छाती पर कैसे सहता !

दिलावर ने जल्दी से चाकू निकाला। उसे चौधरी के कपड़ों से पोंछा। फिर सावधानता से अपनी अंटी में रख लिया। वह भागने के अभिप्राय से दरवाज़े की ओर लपका ही था कि किसी के आने की आहट मालूम हुई। दिलावर दरवाजे की आड़ में हो गया। हमीदा, क़ल्लू की माँ के साथ भीतर दाख़िल हुई। यह हृदय-विदारक दृश्य देखकर दोनों के मुँह से चीख़ निकल गई। हमीदा बाप की लाश से लिपटकर मूर्छित हो गई। और कल्लू की माँ कुछ देर तक सकते में रही--यह क्या हो गया ? फिर उसने छाती पीटना और चीख़-चीख़कर रोना शुरू कर दिया। दिलावर मौक़ा पाते ही रफ़ूचक्कर हो गया। कल्लू की माँ का वावेला सुनकर गाँव वाले एकत्र हो गये। उन लोगों में दिलावर भी था। और सबसे अधिक वही दुखी नज़र आ रहा था। क्यों न होता ? आख़िर चौधरी उसका चचा था। हमीदा ने होश में आने के बाद उसे देखा और रोने लगी। किसी भारी दुख में कोई शुभचिन्तक नजर आ जाये तो आँखें बह निकलती हैं। यही हाल इस समय हमीदा का हुआ। उसने दिलावर से रोते-रोते पूछा—

"यह क्या हो गया मेरे अल्ला !"

दिलावर आगे बढ़ा। उसने हमीदा के सर पर हाथ रखा और कहा—

"बहुत बुरा हुआ। लेकिन तू रोती क्यों है ? चचा की लाश उठने दे ; फिर देख इनके क़ातिल को तलाश निकालता हूँ या नहीं ? मेरा

नाम दिलावर है। वह साला भाग के जायेगा कहाँ ?"

सब लोग सहम गये। वस्तुतः दिलावर से कौन आँख लड़ा सकता था। वह सारे गाँव के गुण्डों का सरदार था। खुद भी पहलवान था। सबको आश्चर्य था कि चौधरी ऐसे नेक और शरीफ़ आदमी को कौन क़त्ल कर सकता है ? वह कौन है, जिसने इसे क़त्ल किया ? इसने किसी का क्या बिगाड़ा था ?

१८

इकबाल का नियम था कि सुबह का नाश्ता नवाब साहब के साथ करता। कुछ देर उनकी सेवा में उपस्थित रहता, फिर घर में वापस चला आता। यहाँ कुछ देर वह बेगम सुरैया या बेगम साहिबा की सेवा में हाज़िर रहता और फिर अपने कमरे में चला जाता। वह अध्ययन में व्यस्त और संलग्न हो जाता। आज भी नित्यप्रति की नाईं वह नवाब साहब की सेवा में उपस्थित हुआ। नाश्ता दोनों ने साथ-साथ किया। फिर शिष्ट होकर बैठ गया। आज नवाब साहब इकबाल की ओर अधिक आकर्षित थे। प्रतिदिन तो नाश्ता करके वह अपने मुसाहिबों में पहुँच जाते और शतरंज इत्यादि शुरू कर देते। आज वह मुसाहिबों की ओर अधिक आकर्षित न हुए। हुक़्क़ा सामने रखा था, उसे पीने लगे। इकबाल खामोश बैठा हुआ था। नवाब साहब ने कहा—

"कहो बेटे; अब तबीयत कैसी है ?"

"अब तो खुदा के फ़ज़ल से बिल्कुल अच्छा हूँ।"

"लेकिन अभी कुछ कमज़ोरी बाक़ी है ?"

"जी हाँ, थोड़ी बहुत कमज़ोरी तो है। इंशाअल्ला यह भी जाती रहेगी।"

"हूँ—हाँ, यह तो बताओ अब प्रैक्टिस करने का इरादा है या अभी मजीद तालीम के लिये तुम कहते हो ? अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें इंगलैंड भेज दूँ।"

इकबाल का चेहरा खुशी से खिल गया। वह उसकी पुरानी तथा

उत्कट इच्छा थी कि वह योरुप जाये और वहाँ की डिग्री लाये। वहाँ के हस्पतालों का निरीक्षण करे। वहाँ की चिकित्सा-पद्धति सीखे। लेकिन वह यह सोचकर ख़ामोश रह जाता था कि नवाब साहब के उस पर अनुग्रह वैसे ही क्या कम हैं। उन्होंने उसे ख़ाक से सोना बना दिया। कण से सूर्य में परिवर्तित कर दिया। किस बरते और किस साहस की बिना पर वह उनसे कह सकता है कि उसे योरुप भेज दें? लेकिन आज तो नवाब साहब स्वयं कह रहे थे। फिर वह इस अद्वितीय तथा स्वर्णिम अवसर को हाथ से क्यों जाने देता? उसने अपनी खुशी को छुपाते हुए कहा—

"हाँ, अगर कुछ अरसे के लिये जा सकूँ तो मेरा फ़न बिल्कुल मुकम्मिल हो जायेगा।"

नवाब साहब ने बड़ी मुहब्बत के साथ कहा—

"बेटे; यह बात थी तो तुमने खुद मुझसे क्यों नहीं कहा? बिल्कुल इत्तफाक़ था कि यह बात मेरे दिमाग़ में आ गई।"

इकबाल ने सर झुका लिया और ख़ामोश रहा। नवाब साहब ने पूछा—

"जवाब दो इकबाल।"

इकबाल ने कहा—

"मुझे अपनी हक़ीक़त याद है। मैं कुछ न था, मगर आपने मुझे सब कुछ बना दिया। अब कहाँ तक आपका प्यार और सखावत···"

नवाब साहब बात काटकर बोले—

"अब तक तुम्हारे दिल में दूसरी बात है। बेटे, यह सब कुछ किसका है? क्या तुम्हारा नहीं? मेरे पास जो कुछ है, सब तुम्हारा है। तुमको मैंने अपनाकर अपना सब कुछ तुम्हें दे दिया। तुम्हारे इन अल्फाज ने मुझे बहुत सदमा पहुँचाया। ऐसा मालूम होता है; तुम मुझे सिर्फ मेहरबान समझते हो—बुजुर्ग और अजीज नहीं।"

"यह न फरमाइये। आप के सिवा मैं और किसे अपना समझ

सकता हूँ ? इस दुनिया में आँखें खोलने के बाद आपके प्यार की गोद में ही पनाह पायी। और आपकी मुहब्बत के साया में ही फला-फूला। आपके सिवा मेरा दुनिया में कौन है ?"

"अगर तुम्हें कोई तकलीफ़ हो तो कहो। मेरा ख्याल है, बेगम भी तुम्हें औलाद से कम नहीं समझतीं।"

"ठीक फरमाया; मैं भी उन्हें अपनी माँ से ज्यादा समझता हूँ।"

"यही होना चाहिए। अच्छा अब तुम सफ़र की तैयारी करो। और जब चाहो इंगलिस्तान रवाना हो जाओ। मेरी तरफ़ से तुम्हें पूरी इजाजत है!"

इकबाल का चेहरा खुशी से दमकने लगा। उसने लड़खड़ाते अल्फाज में जवाब दिया—

"बहुत खूब।"

इतने में शेरखाँ हाँपता-काँपता पहुँचा और नवाब साहब के सामने बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोने लगा। उसकी यह दशा देखकर नवाब साहब और इकबाल दोनों घबरा गये।

इकबाल ने पूछा—

"क्या हुआ शेरखाँ ?"

नवाब साहब ने अभिमानी मुद्रा में प्रश्न किया—

"रोते क्यों हो ? खैरियत तो है ?"

शेरखाँ ने हिचकियाँ लेते हुए कहा—

"खैरियत कहाँ है सरकार ! जमालपुर यतीम हो गया। हम सब का बाप······!"

"चौधरी अजमदअली के बारे में कुछ कहना चाहते हो ?"

"जी हजूर !"

"क्या हुआ उन्हें ?"

"मार डाला उस फरिश्ते को किसी मूर्ख ने।"

नवाब साहब और इकबाल दोनों यह आशा के प्रतिकूल समाचार सुन-

कर चौंक पड़े। दोनों के मुँह से एक साथ निकला—

"मार डाला ?"

"जी सरकार !"

नवाब साहब ने अत्यन्त व्यथित तथा क्रुद्ध स्वर में पूछा—

"क्यों ? किसलिये ?"

"क्या जाने किसने ? मेरे सरकार, वह तो फ़रिश्ता था। उसका भी कोई दुश्मन था, यह अब मालूम हुआ।"

नवाब साहब ने गरजते हुए कहा—

"क़ातिल ने चौधरी को नहीं हमें क़त्ल किया है। हम सारे गाँव का तख्ता उलट देंगे। लेकिन क़ातिल को सज़ा देकर रहेंगे। वह हमारा वफ़ादार ख़ादिम था। उसे हम कभी नहीं भूल सकते। वह ख़ादिम (नौकर) के दर्जे से बढ़कर हमारा दोस्त था और भाई बन चुका था। शायद हमारी निगाह में उसकी बढ़ती हुई इज्ज़त देखकर कुछ लोग उसके खून के प्यासे हो गये।"

"यही बात है हज़ूर।"

"हमीदा का क्या हाल है ?"

"रो-रोकर बेहाल हुई जा रही है सरकार, उसकी तो सूरत नहीं देखी जाती। देखकर कलेजा मुँह को आता है। हाय ! क्या था, क्या हो गया ?"

"जिस बस्ती में उसके बाप के क़ातिल बसते हों, वहाँ हम उसे नहीं छोड़ सकते। हम ख़ुद मातम के लिये उसके पास जायेंगे और उसे यहाँ लायेंगे।"

नवाब साहब, शेरखाँ के साथ जमालपुर चले गये। इकबाल पूर्ववत् अपने स्थान पर उदास और चिंतित बैठा रहा। चौधरी का क़त्ल उसके लिये निजी दुर्घटना थी। कितना प्यार करता था वह बूढ़ा इस नौजवान के साथ ! और हमीदा ? इस कल्पना से उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे। उसकी क्या दशा होगी ? वह क्या कर रही होगी ? मैंने उसे एक पत्र

भी जब से आया हूँ, नहीं लिखा। अब मैं उसकी मातम-पुरसी कैसे करूँगा ? तसल्ली क्यों कर दे सकूँगा ? लेकिन नहीं, वह यहाँ आ रही है । मैं उसके टूटे हुए दिल को जोड़ूँगा । मैं उसके घायल हृदय पर फाहा रक्खूँगा । मैं अपनी चाह और मुहब्बत से उसकी व्यथा और पीड़ा को दूर करूँगा । वह मुझे पाकर सब कुछ भूल जायेगी । मैं उसे पाकर सब कुछ हासिल कर लूँगा । लेकिन वह यहाँ आ रही है और मैं इंगलिस्तान जा रहा हूँ । मेरे पीछे, मेरे बाद वह क्या करेगी ? यहाँ के लोग लाख हमदर्द और शरीफ सही, लेकिन उनके सीने में इकबाल का दिल तो नहीं है । वह उससे प्यार और मुहब्बत का बरताव कर सकते हैं, हमदर्दी और सलूक कर सकते हैं । लेकिन उसका ग़म नहीं बाँट सकते । उसके दुख के साथी नहीं बन सकते । यह काम सिर्फ मेरा है । इसे सिर्फ मैं पूरा कर सकता हूँ । नहीं, मैं इंगलिस्तान नहीं जाऊँगा । इंगलिस्तान का जाना, बड़ी-बड़ी डिग्रियों का लेना इतना जरूरी नहीं है, जितना हमीदा का दिल रखना, उसे तसल्ली देना, उसके ग़म में हिस्सा लेना ।

यही सोचता हुआ इकबाल उठ खड़ा हुआ और अन्दर गया । वह सुरैया की लायब्रेरी के सामने से गुज़रा । वह इस समय वहीं बैठी थी । उसकी नजरें चार हुईं । इकबाल उधर से गुज़रकर अपने कमरे में जाना चाहता था, लेकिन सुरैया को देखकर ठिठक गया । सुरैया ने कहा—

"कहाँ जा रहे हो ? आइये !"

वह ख़ामोशी से आकर एक कुर्सी पर बैठ गया । सुरैया ने कहा—

"क्या बात है ? आप इतने परेशान क्यों नजर आते हैं ?"

इकबाल ने सँभलकर कहा—

"कुछ भी नहीं—चौधरी अजमदअली क़त्ल कर दिये गये ।"

यह सुनकर सुरैया स्तम्भित रह गई ।

"हाय, हाय ; क़त्ल कर डाले गये ! कैसे ?"

"यह तो अभी मालूम नहीं हो सका । नवाब साहब हालात की

जानकारी के लिये जमालपुर तशरीफ ले गये हैं।"

"ऐसे नेक आदमी का भी कोई दुश्मन हो सकता है ? ताज्जुब है !"

"वाक़यी समझ में यहीं आता क्या माजरा है ?"

थोड़ी देर खामोशी रही, फिर सुरैया ने कहा—

"मैंने सुना है आप इंगलिस्तान जा रहे हैं ?"

इकबाल ने विचारों में डूब-डूबे कहा—

"जी, क्या फ़रमाया आपने ?"

सुरैया फूल की तरह मुस्करा दी। उसने कहा—

"आप इस वक्त यहाँ हैं नहीं शायद ?"

इकबाल झेंप गया। उसने बात बनाते हुए कहा—

"जी हाँ, इस वक्त मैं कुछ और सोच रहा था।"

"मैं पूछती हूँ आप इंग्लैंड जा रहे हैं ना ?"

"आपको कैसे मालूम हुआ ?"

"रात अब्बा हज़ूर अम्मीजान से कह रहे थे—मैं इकबाल को विलायत भेजूँगा डिग्री लेने के लिये।"

"जी हाँ, फरमाया तो उन्होंने मुझसे भी था। लेकिन शायद अब न जा सकूँ। कम-से-कम अभी न जा सकूँगा।"

सुरैया ने आश्चर्य से पूछा—

"क्यों ?—तरक्की का इतना बड़ा मौक़ा आप खो देंगे ?"

इकबाल ज़रा सँभला। वह सुरैया के सामने किस प्रकार कह सकता था कि हमीदा उजड़ी हुई और लुटी हुई आ रही है। मुझे उसका सहारा बनना है। मुझे उसका टूटा हुआ दिल जोड़ना है। उसे छोड़कर किस तरह जा सकता हूँ ? इंग्लैंड तो इंग्लैंड उसे अकेला छोड़कर तो मैं स्वर्ग में भी जाना नहीं चाहता। लेकिन ये बातें सुरैया के सामने कहने की नहीं थीं। उसने कहा—

"मेरा मतलब यह है कि जब तक मेरी सेहत ठीक न हो जाये, क्योंकर जा सकता हूँ ?"

"हाँ, यह ठीक है। लेकिन इन्तज़ाम करते-करते भी तो दो-तीन महीने लग जायेंगे।"

"जी हाँ, यही मेरा मतलब था। दो-तीन महीने के बाद जाऊँगा।"

१९

◇◇◇

हमीदा दुख की एक स्थिति से निकलकर दूसरी में आ गई। जमाल-पुर में पिता की विवशतामय हत्या का भयंकर तथा हृदय-विदारक दृश्य हर समय आँखों के सामने रहता था। कोई सान्त्वना देने वाला नहीं था। ईश्वर के अतिरिक्त किसी का आश्रय नहीं था। फिर जब वह नवाब साहब के अनुपम महल में पहुँची तो उसका दिल धड़क रहा था। उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे। उसके होंठों पर पपड़ी जमी हुई थी। उसकी आँखें किसी को ढूँढ रही थीं। और जिसको ढूँढ रही थीं वह इकबाल के अतिरिक्त कोई और न था। वह बड़ी आशाओं के साथ आयी थी। पिता की मृत्यु ने जीवन के इतिहास का एक परिच्छेद समाप्त कर दिया था और इकबाल की दृष्टि का केन्द्रबिन्दु बनकर एक ही मकान में रहने की उमंग ने, एक अत्यन्त ही रुचिकर परिच्छेद प्रारम्भ कर दिया था। रास्ते में ही उसने तय कर लिया था कि अब वह पिता की व्यथा को इक-बाल से सम्बन्धित सुखद क्षणों के समूह में भूल जायेगी। आखिर सब के पिता सदा तो बैठे नहीं रहते। एक न एक दिन उन्हें जाना तो होता ही है। उसे विश्वास था, इकबाल का प्रेम और प्रणय उसके जीवन को सुख एवं हर्ष के प्रकाश से देदीप्यमान कर देगा।

लेकिन नवाब साहब का महल उसके लिये और ज़्यादा भयंकर सिद्ध हुआ। यहाँ इकबाल था, लेकिन बदला हुआ। उसकी आँखें थीं, लेकिन उनसे प्रेम और मुहब्बत की वर्षा नहीं होती थी, बल्कि उदासीनता और निराशा टपकती थी। बाप का ग़म तो उसने सह लिया था लेकिन क्या

इकबाल की बेरुख़ी का ग़म भी वह सह लेगी ?

वह बार-बार सोचती। यह परिवर्तन क्यों? यह अन्तर किसलिये? क्या मैं कुरूप हो गई ? क्या मेरा अंतर्मन बदल गया ? क्या मैं इकबाल के योग्य नहीं रही ? अगर हाँ; तो क्यों ? अगर नहीं, तो इकबाल मुझसे मिलता क्यों नहीं ? बातें क्यों नहीं करता ? मेरे जख़्मों पर फाहा क्यों नहीं रखता ? मेरे टूटे हुए दिल को जोड़ता क्यों नहीं ? मेरे मन की शून्यता को बसाता क्यों नहीं ? वही इकबाल तो है जो मेरे नाम की माला जपा करता था। मुझे देख-देखकर जिया करता था। कहता था—हमीदा तुम्हारे बग़ैर स्वर्ग भी नरक है। और आज मैं उसके पास मौजूद हूँ मगर वह मेरे दुख के वातायन से झाँकता भी नहीं।

हाँ, मैं समझ गई। इकबाल अब मुझसे नहीं सुरैया से प्यार करता है। क्या मैं देखती नहीं; हर वक्त के क़हक़हे, चहचहे और हँसी-मज़ाक और यह जुबैदा तो मुझे अच्छी-ख़ासी कुटनी मालूम होती है। लेकिन मैं क्यों जलूँ ? ठीक तो है, मेरा और सुरैया का क्या मुक़ाबला ? वह हुस्न की रानी है, बड़े बाप की बेटी है। सोने और जवाहरात की गोद में पली और बढ़ी। इकबाल उसे पाकर सब कुछ पा लेगा—यह अनुपम महल, यह शानदार जागीर, यह रुपयों से भरा ख़जाना, यह मोटर, यह गाड़ियाँ, यह शान, यह इज्ज़त !

यह सब चीज़ें जमालपुर की एक ग़रीब छोकरी हमीदा को ब्याह लेने से छिन जायेंगी और सुरैया को पा लेने के बाद मिल जायेंगी। लेकिन जब यह सब कुछ था तो मुझे धोखा क्यों दिया ? मुझ पर मुहब्बत का लाल क्यों फेंका ? मैंने ग़लती की जो इकबाल की मुहब्बत पर यक़ीन किया और अब इस ग़लती को मुझे भुगतना है।

और इकबाल दिल ही दिल में हमीदा को देखकर जल रहा था। उसने हमीदा की उँगली में वह अँगूठी देखी, जो उसने दिलावर को दी थी। और यह अँगूठी अंगारे की तरह उसके दिल पर गिरी। क्या मुहब्बत इतनी अस्थिर है ? इतने थोड़े समय में हमीदा मुझे भूल गई ;

और दिलावर का नाप जपने लगी ? मैं कुछ न रहा और दिलावर सब कुछ हो गया ? मेरी वफ़ादारियाँ भुला दी गई और दिलावर का सिक्का चलने लगा ? फिर आख़िर मुहब्बत का ढोंग रचाने की ज़रूरत क्या थी ? यहाँ रहना क्या ज़रूरी था ? सिर्फ मुझे जलाने के लिये। यह बताने के लिये कि देख हमने तुझे अपना बनाकर छोड़ दिया। और दिलावर को छोड़कर फिर अपना लिया ? यही सही। मुझे भी कोई परवाह नहीं। बग़ैर हमीदा के मर नहीं जाऊँगा।

दोनों के दिल एक दूसरे के प्रति संदिग्ध थे। दोनों एक दूसरे से अलग-थलग थे। नजरें मिलती थीं, लेकिन झुक जाती थीं। इस तरह काफ़ी समय बीत गया। एक रोज़ मौक़ा पाकर इकबाल, हमीदा के कमरे में गया। आज वह इस अंतर्द्वन्द्व का निर्णय करना चाहता था, जिसने जीवन को व्यथित कर दिया था। हमीदा किसी सोच में अपने पलंग के पास खड़ी थी। उसने अपने एक हाथ में अँगूठी वाला हाथ ले रखा था। इकबाल को देखकर वह चौंक पड़ी। सँभली और अलग हट कर खड़ी होगई। इकबाल ने देखा इसे। फिर उसकी दृष्टि अँगूठी पर गई। उसका मुँह क्रोध से लाल हो गया। लेकिन वह सहन कर गया। हमीदा ने उसे देखकर कहा—

"आहा ! आप हैं ?"

इकबाल ख़ामोश रहा। हमीदा बोली—

"कहीं रास्ता तो नहीं भूल गये आप ?"

इकबाल ने अब भी कोई उत्तर नहीं दिया। हमीदा की जिह्वा आज कैंची की तरह चल रही थी।

"क्या आप मुझे पहचानते हैं ?"

इकबाल ने कहा—

हमीदा, यह बातें रहने दो। मैं तुम से कुछ ज़रूरी बातें करने आया हूँ।"

वह बोली—

"क्या बात है ? फरमाइये।"

इकबाल ने भावना के वेग में कहा—

"मैं तुम्हारे पास से एक बड़ी क़ीमती चीज लेकर आया था। वह थी तुम्हारी याद; और पाक मुहब्बत में सब से क़ीमती चीज वहाँ छोड़ आया था और वह था मेरा दिल ! तुम्हारी मुहब्बत से मैं अब तक नशे में हूँ। बताओ मेरे दिल का क्या हाल है ? वह है या नहीं ?"

हमीदा बड़े सब्र से इकबाल की यह बातें सुनती रही। उसकी आँखें डबडबा आयी थीं। उसने अपने को सँभालकर कहा—

"हम ग़रीबों के दिल में सिर्फ़ ग़म रहता है। हमारा दिल किसी और के दिल का कोना नहीं बन सकता। हम इतने ऊँचे नहीं उड़ सकते कि चाँद को पकड़ने की कोशिश करें।"

इकबाल मौन रहा। हमीदा कह रही थी—

"आपने यह बातें करके मेरे दिल में हलचल क्यों मचा दी ? मेरे दिल की नाव ग़म के समुन्दर में डूब रही थी। आप इसके डूबने का तमाशा देखने क्यों आगये ? मैंने आपका क्या बिगाड़ा था ? आपको मेरी बेकसी पर ताने कसने का क्या हक़ है ? बताइये बताइये। आप ख़ामोश क्यों हैं ? मैंने आपसे मुहब्बत की भीख़ नहीं माँगी थी। आप ख़ुद ही बड़े चाव से अपने दिल की किश्ती में मुहब्बत का तोफ़ा सजाकर पहुँचे थे। फिर आप बदल गये। मेरे मन की सादगी ने इसी तरह शिकस्त खाई जैसे ग़रीब अमीर के सामने मात खा जाता है।"

हमीदा अभी कुछ और कहती, लकिन इकबाल ने बात काट ली और कहा—

"हमीदा, तुम मुझे ग़लत न समझो। मेरे दिल में वही आग सुलग रही है, जो पहले सुलग रही थी। मैं नहीं बदला, तुम बदल गई हो।"

हमीदा ने कहा—

"मैं ? मैं बदल गई हूँ ?"

वह जोश के साथ बोला—

"हाँ तुम, तुम बदल गई हो—तुम अब मेरी नहीं किसी और की हो गई हो।"

हमीदा ने क्रोध से कहा—

"ख़ामोश—आप मेरी तौहीन कर रहे हैं और मैं इसकी इजाजत नहीं दे सकती। आप भागने के लिये रास्ता ढूँढ रहे हैं। मैं किसी और की बनती तो ज़रूर आपको बता देगी। इतनी अख़लाकी जुर्रत मुझ में है। मैं सिर्फ आपकी थी। जब आप साथ न दे सके तो अब मैं किसकी हो सकती हूँ ? मैं बार-बार धोखा खाना नहीं चाहती। मैं बार-बार अपने दिल के टुकड़े करना नहीं चाहती। मुझे आपने बहुत अच्छा सबक़ दिया है और मैं इसे कभी नहीं भूलूँगी। मैं आपकी शुक्रगुज़ार हूँ कि आपने मुझे ठोकर खाकर सँभलने का मौक़ा दिया······"

इकबाल ने फिर हमीदा की बात काट ली और नम्रता से कहा—

"जिसने तुम्हें यह अँगूठी दी है, क्या तुम उसकी भी नहीं बन सकतीं ?"

हमीदा बोली—

"वह अँगूठी देनेवाला कौन है ? क्या आप नहीं ? आपने मुझे ठुकरा दिया, मगर यक़ीन रखिये बार-बार मैं आपका दामन नहीं पकड़ूँगी।"

इकबाल ने पूछा—

"यह अँगूठी मैंने दी थी तुम्हें ?"

हमीदा ने रूठे हुए स्वर में कहा—

"जी नहीं, मुझे रास्ते में पड़ी मिल गई थी। क्या दिलावर के हाथ आपने अपना यह तोफ़ा नहीं भेजा था ? मगर जाइये। यह तो आप ऐसे लोगों के बायें हाथ का खेल है। यह लीजिये अपनी अँगूठी; बहुत-बहुत शुक्रिये के साथ।"

हमीदा अँगूठी उतारने लगी। अब इकबाल समझ गया कि असल मामला क्या है ? उसने यकायक हमीदा का हाथ पकड़ लिया और कहा—

"यह नहीं हो सकता ।"

हमीदा ने एक विशेष मुद्रा में उसकी ओर देखा और कहा—

"क्यों ? कुछ हकूमत है आपकी ?"

इकबाल ने कहा—

"नहीं इलतजा ! मैं तुम्हें ग़लत समझा था, मुझे माफ़ करदो । यह दिलावर की हरकत है। वह हद से ज्यादा शरीफ़ है या हद से ज़्यादा बदमाश ! नहीं वह शरीफ़ नहीं हो सकता, वह शैतान है । उसने अँगूठी देकर मेरा नाम इस्तेमाल करके तुम्हें परचाने की कोशिश की । वरना यह अँगूठी तो मैंने उसे दी थी कि वह हमारा राज़ (रहस्य) किसी के सामने न कहे ।"

इकबाल ने अपने हाथ से हमीदा को अँगूठी पहना दी । लेकिन हमीदा की आँखों से अश्रुओं के रूप में मोती झड़ने लगे । इकबाल ने जेब से रूमाल निकालकर ये मोती समेटने चाहे । लेकिन हमीदा ने इकबाल के हाथ से यह रूमाल ले लिया और स्वयं अपने आँसू पोंछ डाले । इस रूमाल पर सुरैया ने अपने हाथ से इकबाल का नाम काढ़कर बड़े चाव से पेश किया था और उसने बड़े चाव से यह तोफ़ा स्वीकार कर लिया था।

दोनों के मन साफ़ हो गये । आँखों से फिर प्यार की वर्षा होने लगी और दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगे ।

२०

◇◇◇

सुरैया यों तो घर में सब का ध्यान रखती थी, लेकिन हमीदा की सज्जनता, भोलापन और सादगी ने उसका मन मोह लिया था। वास्तव में वह उसे बहन की तरह चाहती थी। वह जानती थी—इस अनाथ लड़की का दिल दुखा हुआ है। इसकी दुनिया उजड़ चुकी है। ईश्वर के इस विशाल संसार में कोई ऐसा नहीं जिसे यह अपना कह सके। इसलिये वह हमीदा पर अधिक से अधिक दया-भाव प्रदर्शित करती थी। अपने तमाम कार्यों में उसे सम्मिलित करती थी—कोई जलसा हो हमीदा का सुरैया के साथ होना जरूरी था। सिनेमा का प्रोग्राम बने, असम्भव था कि सुरैया और हमीदा साथ-साथ न हों। कोई समारोह हो, सुरैया साये की नाईं हमीदा को अपने साथ रखती थी। वह चाहती थी कि बाप का ग़म उसके दिल से दूर हो जाये। वह इस घर को अपना घर समझे और सुख-चैन का जीवन व्यतीत करे।

स्वयं हमीदा की यह स्थिति थी कि सुरैया के सद्व्यवहार और अनुग्रहों ने उसको सुरैया का दास बना दिया था। अमीरों के साथ उसे रहने का इत्तफ़ाक नहीं था, और उनके अभिमान तथा अहं को देखकर वह उनसे घृणा करने लगी थी। उन्हीं से नहीं, सारे वर्ग को बुरा समझने लगी थी। जब नवाब साहब उसे लेने जमालपुर पहुँचे तो वह बहुत प्रभावित हुई; क्योंकि यह व्यवहार सर्वथा आशा के प्रतिकूल था। लेकिन वह डरते-डरते इस महल में आई। मोटर में बैठी, ई वह रास्ते भर सोचती रही—देखिये, इस घर में कैसी गुजरती है? बेगम साहिबा का सलूक

कैसा होता है ? उसकी लड़की सुरैया किस तरह पेश आती है ? वह ग़रीब थी, लेकिन स्वाभिमान के धन से वंचित न थी। वह सोचती थी—अगर मेरे साथ अशिष्ट बर्ताव किया गया तो मैं क्या करूँगी ? इस दुनिया में अब मेरा कौन है ? लेकिन जब महल में पहुँच गई तो सुरैया की शिष्टता, सुन्दर व्यवहार और अच्छे बर्ताव को देखकर वह उसे मन ही मन पूजने लगी। वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि इस धनी परिवार में वह इस तरह हाथोंहाथ ली जावेगी। नवाब साहब इतना ख़्याल करेंगे। बेगम साहिबा इतना चाहेंगी। और सुरैया सचमुच उसकी बहन बन जायेगी। सगी बहन से भी ज्यादा चाहने लगेगी। वह घर में एक यतीम, बेसहारा और बेबस लड़की की तरह नहीं बल्कि नवाबज़ादी की तरह रहेगी। यह अनहोनी बात होकर रही और वह यह बात स्वीकार करने को विवश हो गई कि अमीरों में भी अच्छे-बुरे सब तरह के लोग होते हैं। सब के सब बुरे नहीं होते।

रात बड़ी देर तक वह इकबाल से बातें करती रही। इन बातों से उसके दिल का बोझ उतर गया। इकबाल के जाने के बाद भी बड़ी देर तक उसे नींद नहीं आई। इसलिये नहीं आई कि अब वह फिर भविष्य का उजड़ा उद्यान आबाद कर रही थी। इकबाल की बेवफ़ाई ने उसके हृदय की आशाओं और आकांक्षाओं को मर्दित कर दिया था। यदि सुरैया की कृपाएँ उसे जीवित रहने पर विवश न करतीं तो सम्भवतः वह अब तक आत्महत्या कर लेती। लेकिन आज इकबाल ने उसकी लुटी हुई दौलत फिर वापस करदी थी। अब फिर ज़िन्दा रहने को मन चाहने लगा था। अब फिर उसके मन में उमंगें अँगड़ाइयाँ लेने लगी थीं। इकबाल ने फिर उसे एक नया संसार अर्पित किया था। कैसा प्यारा, मनमोहक, कैसा रंगीन और बहार अन्दर बहार से भरा पड़ा था यह संसार !

सुबह उसकी आँख धूप चढ़े खुली। सूरज जगमगा रहा था। उसकी नन्हीं किरणें उसके कमरे को प्रकाशित कर रही थीं। लेकिन इस सूरज

के साथ एक नया सूरज भी चमक रहा था। वह सूरज था—नई उम्मीदों, नई उमंगों का सूरज।

हमीदा ने जल्दी-जल्दी वज़ू किया और नमाज़ पढ़ने लगी। सुरैया अपने कमरे में नाश्ते पर उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। बग़ैर हमीदा के वह ग्रास तक भी न तोड़ती थी। ज़ुबैदा ने कहा—

"हमें भूख लग रही है। नाश्ता क्यों नहीं करतीं ?"

सुरैया ने कहा—

"बड़ी पेटू हो, करो नाश्ता; किसने मना किया है तुम्हें ?

ज़ुबैदा ने पूछा—

"और तुम ?"

सुरैया बोली—

"हम तो हमीदा के साथ चाय पीयेंगे।"

ज़ुबैदा ने जलकर कहा—

"ऊँ ; यह चोंचले और बूढ़ी अदाएँ मुझे अच्छी नहीं लगतीं। ऐसी ही चाह है तो जाओ, हाथ पकड़कर ले आओ नवाबजादी को।"

ज़ुबैदा नाश्ता करने लगी। सुरैया झप से उठी।

"जाते हैं, ले आयेंगे अपनी हमीदा को ; तुम क्यों जलती हो उससे ?"

"पहले नाश्ता फिर बातें।"

सुरैया हमीदा के कमरे में पहुँची। वह नमाज़ ख़त्म कर चुकी थी और मुसल्ले पर बैठी दुआ माँग रही थी। सुरैया ख़ामोशी से आकर हमीदा के पलंग पर बैठ गई। तकिये के पास एक रूमाल पड़ा था। उसने यों ही उठा लिया। देखते ही चौंक पड़ी। यह वही रूमाल था जिसे उसने बड़े चाव से काढ़कर इकबाल को दिया था और जिसे वह रात यहाँ भूल गया था। सुरैया दिल ही दिल में सोचने लगी—यह माजरा क्या है ? यह रूमाल हमीदा के पास कैसे पहुँचा ? मैंने तो कभी इकबाल को

हमीदा से या हमीदा को इकबाल से बातें करते नहीं देखा। फिर ? यही सोच रही थी कि हमीदा मुसल्ले से उठी। सुरैया ने जल्दी से रूमाल छुपा लिया। हमीदा ने सामने आकर सरमान से सुरैया को सलाम किया। उसने सर के इशारे से सलाम का जवाब दिया और पूछा—

"यह बेवक्त की नमाज़ कैसी ?"

हमीदा ने जवाब दिया—

"सुबह आँख देर से खुली थी।"

सुरैया ने फिर सवाल किया—

"नींद नहीं आयी रात ?"

"रात भर।"

"रात भर ? लेकिन क्यों ?"

हमीदा मुस्करा दी। ज़िन्दगी में पहली बार सुरैया को हमीदा की यह मुस्कराहट विष मालूम हुई।

सुरैया ने कहा—

"चलो, नाश्ता नहीं करोगी ?"

"चलिये।"

दोनों साथ-साथ नाश्ता के कमरे में पहुँचीं। ज़ुबैदा इत्मीनान से केक पर केक और तोस पर तोस खा रही थी। सुरैया ने कहा, "डटी हुई हो !"

ज़ुबैदा ने कहा—

"आओ।"

"सुरैया, ज़ुबैदा और हमीदा साथ-साथ नाश्ता करने लगीं। हमीदा ने चाय की प्याली उठाकर मुँह से लगाई। तभी सुरैया को कोई चमकती हुई चीज़ उसकी उँगली में नज़र आयी। सुरैया ने ग़ौर से देखा। यह वही अँगूठी थी जो उसने इकबाल को तोफ़े में दी थी। प्रत्यक्षतः वह चाय पी रही थी पर वास्तव में हृदय का रक्त पी रही थी। अब तक वह हमीदा से रुष्ट थी। अब इकबाल से सम्बन्धित भी उसके मन में खटक

पैदा हुई। लेकिन वह बड़ी ही सभ्य लड़की थी। क्या मजाल जो उसने अपनी स्थिति को प्रकट होने दिया हो। जुबैदा एक सतर्क और बौद्धिक लड़की थी। उसने जो देखा, सुरैया हमीदा की उँगली पर दृष्टि केन्द्रित किये है तो स्वयं भी देखने लगी और तुरन्त भाँप गई कि मामला क्या है। उसने फ़ौरन हमीदा से कहा—

"बड़ी अच्छी अँगूठी है।"

हमीदा ने कोई जवाब नहीं दिया। जुबैदा ने कहा—

"नगीने की ज्योति तो देखो, नजर नहीं ठहरती—देखें हमीदा जरा-उतारना तो।"

सुरैया निर्द्वन्द्व भाव से चाय पी रही थी। प्रत्यक्षतः वह जुबैदा की बातों में कोई दिलचस्पी नहीं ले रही थी; लेकिन पैनी दृष्टि से हमीदा का चेहरा पढ़ने की कोशिश कर रही थी। मगर उस चेहरे पर भोलेपन और सादगी के अतिरिक्त कुछ न था। हमीदा ने खामोशी से अँगूठी उतारी और जुबैदा के सामने रख दी। जुबैदा उसे उलट-पुलटकर देखने लगी। फिर उसने कहा—

"बड़ी अच्छी है—देख तो सुरैया।"

उसने अँगूठी सुरैया की तरफ़ बढ़ा दी। सुरैया ने अनमने ढंग से उसे ज़रा इधर-उधर उलट-पुलटकर देखा। फिर हमीदा को वापस कर दी। हमीदा ने फिर उसे उँगली में पहन लिया। जुबैदा से फिर न रहा गया। उसने कहा—

"क्यों हमीदा, यह कितने में ली?"

"मैंने मोल नहीं ली।"

"फिर? कहीं पड़ी हुई मिल गई है?"

"जी, यह बात भी नहीं है।"

"फिर?"

"यह निशानी है किसी की।"

जुबैदा उछल पड़ी।

"निशानी ! किसकी ?"

हमीदा लाजवन्ती की तरह शरमा गई।

"हम जानते हैं।"

और हमीदा अपने कमरे में वापस चली गई। उसके जाने के बाद जुबैदा ने सुरैया ने कहा—

"देखा तुमने ?"

सुरैया विचार-मग्न थी। वह चौंक पड़ी। उसने कहा—

"क्या हुआ जुबैदा ?"

"अरे पगली, मैं कह रही हूँ, देखा तूने ?"

"क्या ?"

"अँगूठी, और क्या मेरा सर ?"

सुरैया मुस्करा दी।

"हाँ देखा, देख लिया।"

जुबैदा ने कहा—

"मैं जानती हूँ यह अँगूठी किसकी है ? मुझे मालूम है यह किसके पास थी। मैं देख रही हूँ, अब यह किसके क़ब्ज़े में है। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता। मैं यह नहीं होने दूँगी।"

"क्या नहीं हो सकता ? क्या नहीं होने दोगी ?"

"यही तमाशा।"

सुरैया ने मुस्कराते हुए कहा—

"अरी बावली ! दुनिया तमाशा के सिवा है क्या ?"

"ज़्यादा न सोचा करो वरना दिमाग़ ख़राब हो जायेगा। आओ चलें।"

जुबैदा सुरैया का हाथ पकड़कर अपने साथ ले आई। सुबह का समाचार-पत्र रखा हुआ था। सुरैया उसे देखने लगी। जुबैदा मौक़ा पाकर तीर की तरह हमीदा के कमरे में पहुँची। वह अपनी चारपाई पर लेटी कोई सिनेमा-गीत गा रही थी। इतने में जुबैदा पहुँची। उसे देखकर

हमीदा खामोश हो गई और उठकर बैठ गई। उसने कहा—

"कौन ? जुबैदा बहन ; आओ।"

जुबैदा खामोशी से आकर बैठ गई। आज हमीदा का मूड बदला हुआ था। वह खुश थी, बहुत खुश । उसने जुबैदा को छेड़ते हुए कहा—

"किधर भूल पड़ीं ?"

फिर वह स्वतः मुस्कराई और कहने लगी—

"कभी हम उनको—कभी अपने घर को देखते हैं।"

जुबैदा ने कहा—

"हमीदा !"

वह बोली—

"फ़रमाइये ?"

अत्यन्त गम्भीरता से जुबैदा ने कहा—

"जो ख्वाब तुम देख रही हो, वह किसी दूसरे के हसीन ख्वाबों को बरबाद कर देंगे।"

हमीदा ने आश्चर्य से कहा—

"क्या कह रही हो बहन ?"

जुबैदा ने भफरे हुए स्वर में कहा—

"मैं कह रही हूँ, जो जलजला इस घर में आया है उसका असर तुम्हारी इस छोटी सी चहारदीवारी पर भी पड़ा या नहीं ?"

हमीदा ने अधिक आश्चर्य से पूछा—

"ज़लज़ला ?"

जुबैदा ने क्रोध में आकर कहा—

"भोली न बनो, तुमने भूचाल बनकर इस घर के दरो-दीवार हिला दिये हैं।"

हमीदा सहम गई। उसने रुआँसी होकर पूछा—

"मैंने ?"

"हाँ तुमने...तुमने हरे-भरे बाग़ में आग लगा दी है।"

हमीदा से और कुछ न बन पड़ा। उसने फिर अपना सवाल दोहराया—

"मैंने ?"

"हाँ तुमने····तुम वह नागिन हो जो अपने पालने वाले को खुद डस लेती है।"

हमीदा ने कठिनाई से अपनी चेतना को केन्द्रीभूत किया और कहा—

"मैं नागिन हूँ ?"

"हाँ तुम—यह अँगूठी उतार दो।"

हमीदा ने तीखेपन के साथ पूछा—

"क्यों उतार दूँ ?"

"यह तुम्हें उतारनी ही पड़ेगी।"

"लेकिन क्यों ?"

"शरीफ़ लोग डाका नहीं डाला करते। यह अँगूठी तुम्हारी नहीं है।"

हमीदा ने पूछा—

"फिर किसकी है ?"

जुबैदा ने कठोर स्वर में उत्तर दिया—

"सुरैया की।"

"सुरैया की ?"

"हाँ सुरैया की—लाओ, उतारो, मुझे दो।"

हमीदा के पाँव के नीचे से ज़मीन निकल गई। उसने व्याकुलता के साथ पूछा—

"यह सुरैया की है ?"

"हाँ—इकबाल सुरैया से मुहब्बत करता है, सुरैया इकबाल को चाहती है। फिर सुन लो, सुरैया इकबाल को चाहती है। अपना फ़र्ज़ पहचानो और याद रखो। आड़े नहीं आना होगा ; वरना तोड़ दी जाओगी। दीवार नहीं बनना होगा ; वरना ढा दी जाओगी। जिसे बनाना आता है, वह बिगाड़ भी सकता है। जो पनाह दे सकता है, वह निकाल भी

सकता है। जो रहम कर सकता है, उसे ग़ुस्सा भी आ सकता है। इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं कह सकती—तुम अँगूठी उतारती क्यों नहीं ?"

हमीदा की आँखों में आँसू भर आये। उसने खामोशी के साथ अँगूठी ज़ुबैदा को दे दी। ज़ुबैदा अँगूठी लेकर वापस चली गई। उसके जाने के बाद हमीदा फूट-फूटकर रोने लगी। चन्द मिनट पहले वह क्या थी ? और अब क्या बन गई ? इस लघु काल में आशाओं का महल निर्मित भी हुआ और धराशायी भी हो गया। वह सोचने लगी—यह ज़ुबैदा क्या कह गई ? इकबाल सुरैया को चाहता है और सुरैया इकबाल को। यानी अब तक मेरे साथ मज़ाक हो रहा था ? मेरी ग़रीबी का मज़ाक उड़ाया जा रहा था ? जो कुछ हुआ ठीक हुआ। मैं इसी क़ाबिल थी। गरीब हूँ ना ! ग़रीबी का इसी तरह मजाक उड़ाया जाता है। उसे इसी तरह छेड़ा जाता है। उधर सुरैया अपने कमरे में व्यथित और पीड़ित चुपचाप बैठी समाचार-पत्र पढ़ रही थी। उसकी दृष्टि समामार-पत्र पर जमी हुई थी और मन न जाने कहाँ था ? मस्तिष्क न जाने क्या सोच रहा था ? और वह चंचल ज़ुबैदा इन दोनों से बेख़बर और बेपरवाह अपना काम कर रही थी। वह सीधी इकबाल के कमरे में पहुँची। वह इस समय कहीं बाहर जा रहा था। उसे देखकर ठिठका—

"आप ?"

"जी यह ख़ाकसार, अगर हुक्म हो तो वापस जाऊँ ?"

"जी नहीं, तशरीफ़ रखिये !"

ज़ुबैदा एक कुर्सी पर बैठ गई। सामने दूसरी कुर्सी पड़ी थी, उस पर इकबाल बैठ गया। ज़ुबैदा ने कहा—

"आप शायर हैं ?"

इकबाल ने मुस्कराते हुए कहा—

"नहीं।"

वह बोली—

"फलसफी ?"

इकबाल ने जवाब दिया—

"यह जुर्म भी अभी तक नहीं हुआ।"

वह कहने लगी—

"फिर आप इतने बेसुध क्यों हैं ?"

"पहेली न बुझाइये ; साफ़-साफ़ कहिये।"

ज़ुबैदा ने इकबाल की उँगली की ओर संकेत करके कहा—

"अँगूठी ; अँगूठी क्या हुई ?"

इकबाल इस प्रश्न के लिये बिल्कुल तैयार नहीं था, वह चकरा गया।

"अँगूठी !"

"अब बनिये नहीं, साफ़-साफ़ बताइये, कहाँ है वह ?"

इकबाल सर खुजलाने लगा।

"वह तो..."

"गुम हो गई ?—आपसे और उम्मीद ही क्या थी ? आपको मालूम है, तोफ़ों की नाक़दरी करना कितना बड़ा जुर्म है—यह लीजिये।"

यह कहकर ज़ुबैदा ने अँगूठी इकबाल की तरफ़ बढ़ादी। इकबाल हँसने लगा।

"बड़ी शरीर (चंचल) हो ज़ुबैदा तुम !"

"शुक्रिया इस इज्ज़त अफ़ज़ाई का—अब आप चुपचाप इसे पहन लीजिये।"

इकबाल ने अँगूठी पहन ली और कहा—

"कोई और हुक्म ?"

"हाँ।"

"वह भी फ़रमा दीजिये।"

"ऐसी ग़लती अब कभी न हो।"

"इस हुक्म की तामील सर-आँखों पर की जायेगी। अब इजाजत है मुझे जाने की ?"

"तशरीफ़ ले जाइये ।"

इकबाल हँसता-मुस्कराता हुआ बाहर चला गया। ज़ुबैदा हर्षित और उल्लसित सुरैया के कमरे में पहुँची। सुरैया ने उस पर एक नज़र डाली और फिर अख़बार पढ़ने लगी। ज़ुबैदा ने अख़बार उसके हाथों से छीन लिया और पीठ उसकी ओर करके बोली—

"पीठ ठोको हमारी ।"

सुरैया मुस्करा दी ।

"यह क्यों ? कौनसा गढ़ जीतकर आई हो ?"

"सुनाऊँ सारी राम-कहानी ?"

ज़ुबैदा पास आकर बैठ गई कि सारा माजरा सुना दे; सुरैया ने कहा—

"कोई नयी शरारत करके आयी होगी; मैं नहीं सुनती ।"

ज़ुबैदा ने कहा—

"मैं ख़फा हो जाऊँगी ।"

सुरैया मुस्कराई ।

"ख़फा होने से पहले थोड़ा सा ज़हर लाकर मुझे दे दो ।"

ज़ुबैदा उससे लिपट गयी ।

"ज़हर खायें तेरे दुश्मन ।"

सुरैया ने कहा—

"जाओ तुम्हें अम्मी ने बुलाया है, वह आई है बल्कैस चची ।"

बल्कैस चची का नाम सुनकर ज़ुबैदा शरमा गई। उनके लड़के से ज़ुबैदा की मँगनी हो चुकी थी। और अब शादी होने वाली थी।

२१

नवाब साहब के महल में इस समय भ्रांत- धारणाओं का एक जाल फैला हुआ था। पहले मात्र हमीदा और इकबाल में भ्रांति थी—लेकिन बहुत ही साधारण सी। अब सुरैया और इकबाल में थी। हमीदा और इकबाल के दिल फिर एक दूसरे से दूर होते जा रहे थे। और इकबाल इस तूफ़ान से पूर्णतया अनभिज्ञ था, जो सुरैया के दिल में उमड़ रहा था, जिसने हमीदा के मन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। इकबाल ने ज़ुबैदा के कहने से अँगूठी पहन ली। वह जानता था कि ज़ुबैदा का काम ही शरारत करना है। उसने इधर-उधर की जड़ के हमीदा से अँगूठी ले ली होगी या सोते में उसकी अँगुली से उतार ली होगी। उसको इस बात का शक ही नहीं था कि अँगूठी का मामला इतनी गम्भीरता धारणा कर चुका है कि हमीदा और सुरैया, दोनों उससे रुष्ट हो जायेंगी, दोनों के दिल टूट जायेंगे और दोनों उससे दूर भागने लगेंगी। और वह ज़ुबैदा, जिसने यह आग लगाई थी, बिल्कुल बेफ़िक्री के साथ अनजान इधर-उधर घूम रही थी। यद्यपि वह जानती थी कि उसने जो आग लगायी है, वह यों ही नहीं बुझ सकती। वह ज़रूर भड़केगी। ज़रूर किसी न किसी के दिल को ख़ाक करके रहेगी। वह जानती थी ; दिल जलेगा तो हमीदा का, दिल अगर ख़ाक होगा तो हमीदा का। सुरैया के बारे में वह सोच भी नहीं सकती थी कि इसका विरोधी प्रभाव उस पर भी हो सकता है। अपनी ओर से तो वह सारा मामला कुछ क्षणों में ही तय कर चुकी थी। हमीदा से उसने अँगूठी छीनी थी। उसे धौंस भी दे दी थी। वह अँगूठी फिर उस

उँगली में उसने पहना दी थी, जिससे वह उतर कर हमीदा की उँगली में पहुँची थी। रही सुरैया तो अब उससे कहने की क्या आवश्यकता थी? क्या उसकी आँखें नहीं हैं? उसने ज़रूर अपना क़ीमती तोफ़ा इकबाल की उँगली में देख लिया होगा। और संतुष्ट हो गई होगी।

इस घटना को कई दिन गुज़र गये। हमीदा और इकबाल में भेंट न हो सकी। भेंट न होने का एक कारण यह भी था कि इन दोनों में स्वच्छन्दतापूर्वक भेंट और वार्तालाप करने की इस घर में सम्भावना नहीं थी। नवाब साहब, बेगम साहिबा, सुरैया, ज़ुबैदा कोई भी वास्तविक तथ्य से परिचित नहीं था। अतएव जब तक बात साफ़ न हो जाये, दोनों एक-दूसरे से सतर्क रहने पर विवश थे। इकबाल ऊपर से नीचे आ रहा था और हमीदा नीचे से ऊपर जा रही थी। इस सुअवसर से इकबाल ने लाभ उठाना चाहा कि हमीदा को अँगूठी वापस कर दे। लेकिन हमीदा न जाने क्या सोच रही थी? इकबाल को देखकर उसके कोमल हृदय में उथल-पुथल मच गयी। इकबाल ने प्यारभरी नज़रों से उसे देखा और कहा—

"हमीदा!"

हमीदा रुके बग़ैर ऊपर चली चली गई। इकबाल मुँह देखता रह गया। थोड़ी देर बाद फिर दोनों में मुठभेड़ हुई। इकबाल ऊपर जा रहा था और हमीदा किसी काम से नीचे बेगम साहिबा के पास जा रही थी। इकबाल ने फिर उसे रोका—

"हमीदा!"

वह अनमने भाव से बोली—

"हट जाइये, नवाब साहब आ रहे हैं।"

इकबाल पीछे मुड़कर नवाब साहब को देखने लगा और हमीदा आँखों से ओझल हो गई। इकबाल समझ गया हमीदा क्यों ख़फ़ा है। मगर हमीदा यह समझ रही थी कि इकबाल उस पर व्यंग कर रहा है। उसका मज़ाक उड़ा रहा है। उससे खेल रहा है। वह आँखों में आँसू भरे हुए अपने कमरे में पहुँची। दरवाज़ा अन्दर से बन्द किया और तकिये में मुँह

ढाँपकर फूट-फूटकर रोने लगी। रोने से दिल का बोझ उतर जाता है, हमीदा इसी तरह अपने टूटे हुए और निराश्रित मन का बोझ उतारने का प्रयास कर रही थी।

"हमारा भी तो आखिर ज़ोर चलता है गरेबाँ पर।"

सन्ध्या समय तक हमीदा अपने कमरे में बन्द रही। फिर वह मुँह-हाथ धोकर बाहर आई। अब उसे सुरैया से मिलते हुए, आँखें चार करते हुए, बातें करते शरम आती थी। किस दिल से मिले? किस जबान से बात करे? रही ज़ुबैदा, तो उससे वह कुछ पहले से ही अधिक घनिष्ठ नहीं थी। और जिस दिन से वह उसकी पूँजी पर डाका डालकर गई थी, वह ज़ुबैदा को देखकर क़तरा जाती थी। उसका मन इस समय बहुत घबरा रहा था। उसने सोचा, चलो इस समय पायें बाग की सैर कर लें, सम्भवतः वहाँ के वायुमंडल से तबीयत ठीक हो जाये। ख़्याल कुछ बँट जाये।

पायें बाग़ की घास पर एक गार्डन टेबुल और कुछ कुर्सियाँ रखी हैं। सुरैया और इकबाल बैठे हैं। ज़ुबैदा पास खड़ी है। सुरैया कुछ चुप-चुप है। इकबाल भी सुरैया की ख़ामोशी के कारण चुप साधे हुए है। ज़ुबैदा चाहती है—ये दोनों घुल-मिलकर बातें करें। वह शोशा छोड़ती है। उसने अत्यन्त गम्भीरता के साथ इकबाल से प्रश्न किया—

"एक बात तो बताइये?"

इकबाल ने बड़ी नम्रता से कहा—

"फ़रमाइये?"

ज़ुबैदा ने पूछा—

"यह दिल धक-धक क्यों करता है?"

इकबाल ने मुस्कराते हुए कहा—

"धक-धक करना, यही तो दिल का काम है।"

ज़ुबैदा ने बड़े भोलेपन से पूछा—

"और यह धड़कन, यह क्या चीज है?"

इकबाल ने कहा—

"धड़कन, धड़कन है और क्या है।"

सुरैया मुस्करा दी। जुवैदा ने कहा—

"अच्छा एक बात और बताइये ?"

इकबाल ने शिष्टता से मुस्कराकर कहा—

"वह भी पूछ लीजिये।"

जुवैदा बोली—

"मुहब्बत की तारीफ़ ?"

इकबाल ने जवाब दिया—

"मुहब्बत इतनी नाज़ुक चीज़ है कि वह अल्फ़ाज़ का बोझ नहीं उठा सकती। उसे समझा जा सकता है, समझाया नहीं जा सकता।"

जुवैदा ने मुँह बनाकर कहा—

"हमारी समझ में नहीं आतीं ये बातें।"

इकबाल ने कहा—

"इसीलिये मैंने आपको नहीं समझाया। यह वह फलसफ़ा है जो आपकी समझ में नहीं आ सकता।"

"क्यों भला ?"

"बजाये इसके कि मैं अपनी ज़बान से कुछ कहूँ; दाग़ का एक शेर सुनाए देता हूँ। अर्ज़ किया है—

'सोज़ यह कीना साज़ क्या जानें ?
नाज़ वाले नयाज़ क्या जानें ?'

आप नाज़ उठवाइये। नयाज़मन्दी के लिये बलकैस चची के साहबज़ादे काफ़ी हैं। क्यों सुरैया, क्या नाम है उनका ?"

सुरैया फूल की तरह खिल गई। उसने कहा—

"अब जवाब दो जुवैदा ! बहुत बढ़-बढ़कर बोल रही थी। यह ओस क्यों पड़ गई ?"

इन लोगों में घुल-मिलकर यह बातें हो ही रही थीं कि हमीदा उधर

से गुज़री। ज़ुबैदा ने तो उसकी तरफ़ देखा भी नहीं। इकबाल ने देखा और आँखें नीची करलीं। सुरैया ने सभ्यता और प्यार के साथ कहा—

"आओ हमीदा, चाय पीओ !"

हमीदा का चाय पीने को बिल्कुल मन नहीं चाह रहा था। ज़ुबैदा और इकबाल को तो यहाँ बैठा देखकर उसका मन चाहने लगा कि भाग जाये, लेकिन सुरैया का कहा वह टाल न सकती थी। चुपचाप आकर बैठ गई। सुरैया ने ट्रे उसकी तरफ़ खिसका दी।

"तुम्हीं बनाओ !"

वह ख़ामोशी से सर झुकाये चाय बनाने लगी। ज़ुबैदा ने कहा—

"मेहरबानी करके मेरे लिये तकलीफ़ न कीजियेगा। मैं अपनी चाय खुद बना लूँगी अपने हाथ से।"

सुरैया को ज़ुबैदा की इस क्रिया पर क्रोध आ गया। वह उठ खड़ी हुई। उसने हमीदा का हाथ पकड़कर उसे उठाते हुए कहा—

"चलो हमीदा; ऐसे बदतमीज़ों के साथ चाय पीना तो बड़ी चीज़ है, बैठना भी गुनाह है। ज़ुबैदा, तुम्हारी यह बातें मुझे ज़रा भी अच्छी नहीं लगतीं। मैं देख रही हूँ, कई दिन से तुम हमीदा की तौहीन कर रही हो। मैं अपनी तौहीन सहन कर सकती हूँ, इसकी नहीं।"

ज़ुबैदा ने खिसयानी सी होकर हमीदा का हाथ पकड़कर उसे बैठा लिया और सुरैया से कहा—

"हम जानें और हमीदा जानें। तुम बीच में बोलने वाली कौन ? ऐ वाह ! काज़ीजी क्यों दुबले शहर की फ़िक्र में।"

इकबाल ने सुरैया से कहा—

"माफ़ कर दीजिये, ज़ुबैदा की बात का बुरा मानना क्या ?"

सुरैया बैठ गई। ज़ुबैदा ने इकबाल से कहा—

"वाक़यी आप इक़बालमन्द—भाग्यशाली—हैं वरना सुरैया जैसी ज़िद्दी छोकरी से उठा-बैठी कराना कुछ आसान नहीं है।"

फिर ज़ुबैदा ने ट्रे अपने सामने बढ़ा ली और बोली—

"हम पिलायेंगे हमीदा को अपने हाथ से चाय।"

वह चाय बनाने लगी।

सब ने धैर्य से चाय पी। बड़ी देर तक यह गोष्ठी जमी रही। एक हमीदा थी, जो गुम-सुम बैठी थी। वरना गोष्ठी में जितने थे, सब बुलबुल की तरह चहक रहे थे। और चंचल ज़ुबैदा खुद भी चहक रही थी और दूसरों को भी हँसा रही थी। इसका काम यही था।

रोज़ हमीदा रात की नमाज़ पढ़ते ही सो जाती थी, लेकिन आज नींद कोसों दूर थी। आज उसका और इकबाल का आमना-सामना हुआ था। आज वह इकबाल के पास बड़ी देर तक बैठी थी, लेकिन अपरिचित की तरह। आज सुरैया ने ज़ुबैदा को उसके लिये डाँटा था। आज भी उसने इकबाल की उँगली में वह चमकती हुई अँगूठी देखी। ये सब बातें रह-रहकर उसे याद आ रही थीं। उसका मन आतुर था। रात के बारह बज गये; मगर नींद न आनी थी, न आई। कभी वह टहलने लगती कभी बैठ जाती। कभी खिड़की में खड़े होकर पायें बाग़ के दृश्यों का अवलोकन करने लगती। वह स्थान यहाँ से चाँद की जगमग करती रोशनी में साफ़ दिखाई दे रहा था, जहाँ आज महफ़िल जमी हुई थी। जहाँ ज़ुबैदा ने उसकी तौहीन की थी। जहाँ सुरैया ने उसके टूटे हुए दिल को जोड़ने की कोशिश की थी। जहाँ इकबाल ने उसके दिल को फिर तोड़ दिया था।

बड़ी देर तक मौन खिड़की में खड़ी वह पायें बाग़ का अवलोकन करती रही। फिर उसके मन में न जाने क्या आया कि वह गुनगुनाने लगी और फिर वह मीठे-मीठे स्वरों में गाने लगी—

"छूटे असीर तो बदला हुआ ज़माना था।
न फूल थे, न चमन था, न आशियाना था।।"

रात का समय था। वातावरण की मौनता, मर्मस्पर्शी गीत, इन सब चीज़ों ने मिलकर एक अद्भुत से वातावरण की सृष्टि कर दी। और ठीक इस समय जबकि हमीदा का दर्द में डूबा हुआ नग़मा वायुमंडल में मुखरित

हो रहा था, इकबाल अपने कमरे से निकला और सीधा साहस करके हमीदा के कमरे में आ गया। आज उसे भी नींद नहीं आ रही थी। आज पायें बाग की महफ़िल में उसने हमीदा का उदास चेहरा देखा था और उसकी झुकी हुई आँखें देखी थीं। उसके थिरकते हुए होंठ देखे थे और सब कुछ जान गया था। उसका दिल टुकड़े-टुकड़े होने लगा था। लेकिन वह स्वयं हमीदा से कम बेबस कब था? अतिरिक्त मौन रहने और सर झुका रहने के अन्य मार्ग ही क्या था? जिस तरह हमीदा की आँखों से नींद रूठी हुई थी, यही हाल इकबाल का भी था। वह भी बिस्तर पर लेटा करवटें बदल रहा था। और आखिर में जब हमीदा का स्वर उसके कानों में पहुँचा तो वह सहन न कर सका। एक अपराधी की भाँति अपनी प्रेमिका के सामने उपस्थित हो गया। जब वह व्याकुलता से अपने कमरे से निकलकर हमीदा के कमरे की ओर बढ़ा तो एक अन्य छाया चोरी से उसका पीछा कर रही थी। यह सुरैया थी। हमीदा के मर्मस्पर्शी बोलों ने उसकी नींद भी उचाट कर दी थी। वह भी करवट बदलते थक गई तो हमीदा के आँसू पोंछने के लिये बाहर निकली। उसका विचार था—हमीदा की आज ज़ुबैदा ने तौहीन की थी। उसी के प्रतिक्रियास्वरूप यह दर्दभरे बोल उसके मुँह से निकल रहे हैं। लेकिन जब वह कमरे से निकली तो इकबाल को उसके कमरे की ओर जाते देखकर ठिठक गई। जब इकबाल अन्दर पहुँच गया तो वह आई और दरवाज़े की ओट से खड़ी होकर उन दोनों की बातें सुनने लगी।

इकबाल को देखकर हमीदा ने गाना बन्द कर दिया। यद्यपि उसकी आँखों में अभी तक आँसू थे, फिर भी उसने कहा—

"आप! इस वक्त?"

इकबाल ने कहा—

"हाँ हमीदा; मैं। तुमने बुलाया और मैं आगया।"

हमीदा ने आश्चर्य से कहा—

"मैंने बुलाया! कब?"

इकबाल ने कहा—

"अभी, और कब।···हमीदा, यह तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों ?"

हमीदा ने एक ठंडी साँस भरकर कहा—

"ये आँखें इसीलिये बनी हैं।"

इकबाल आतुर होकर बोला—

"यह न कहो हमीदा !"

हमीदा ने अत्यन्त गम्भीरता से कहा—

"आप जो चाहे करें, मैं रोऊँ भी नहीं ? आँसू भी न बहाऊँ अपने हाल पर ?"

इकबाल, हमीदा के और निकट आ गया—

"हमीदा, दफ़न करदो इन आँसुओं को, गला घोंट दो इस फ़रयाद का।"

हमीदा बोली—

"लेकिन आँसुओं पर बस किसका है ? यह वह बारिस है जो बग़ैर बादल के बरसती है। इसमें न गरज है, न चमक; लेकिन यह बरसने पर आता है तो बरसता ही रहता है। फिर रोके नहीं रुकता।"

"लेकिन क्यों ? तुम रो क्यों रही हो ? क्या हुआ ? किसी ने कुछ कहा ?"

"आपकी मेहरबानी का शुक्रिया ! किसी ने कुछ नहीं कहा, न किया। मैं पागल हूँ; यों ही रोना आ गया। आप हँसी पर क़ाबू नहीं रखते, मेरा रोने पर बस नहीं।"

"यह तुम क्या कह रही हो हमीदा ? तुम्हारा एक-एक लफ़्ज़ मेरे दिल पर तीर की तरह लग रहा है। रहम करो मुझ पर भी, और अपने ऊपर भी।"

हमीदा ने व्यंगयुक्त स्वर में कहा—

"रहम !···आप इस लफ़्ज़ का मतलब जानते हैं ?"

इकबाल ने रुआँसी आवाज़ में कहा—

"नहीं—तुम जानती हो, तुम ही सिखा दो।"

हमीदा रूठकर बोली—

"आप अपनी नींद ख़राब करके यहाँ क्यों आ गये? किसी ने देख लिया तो?"

इकबाल ने जवाब दिया—

"कोई देख लेगा तो क्या करेगा?"

"आप बदनाम हो जायेंगे।"

"इश्क़ बदनामी की परवाह नहीं करता। वह तो उसका स्वागत करता है।"

"शुक्रिया; बहुत-बहुत शुक्रिया!"

"हमीदा, यह बातें छोड़ो, काम की बातें करो।"

"काम की बात सिर्फ यह है कि मेरा ख़्याल छोड़ दीजिये।"

"क्यों? क्यों छोड़ दूँ?"

"आप मोती को छोड़कर कंकर की तरफ़ लपक रहे हैं। यह ग़लती है।"

इकबाल ने आश्चर्य से कहा—

"मैं समझा नहीं, तुम्हारा मतलब क्या है?"

हमीदा ने कहा—

"इस मुहब्बत की राह में फ़ौलादी दीवारें खड़ी हैं।"

"फौलादी दीवारें?"

"हाँ, मसलन—अमीरी और ग़रीबी। मैं ग़रीब हूँ और आप अमीर हैं।"

"बिल्कुल ग़लत, तुमने मुझे अमीर कैसे समझ लिया? मेरी और तुम्हारी पोजीशन बिल्कुल एक है। नवाब साहब ने जिस तरह तुम्हारी पोजीशन पर रहम खाकर तुम्हें पाला, इसी तरह मैं भी यतीम था और वह मुझे यहाँ ले आये। मैंने उनके दामन में पनाह पाई, बढ़ा, पढ़ा और

जवान हुआ; लेकिन मैं अपनी हक़ीक़त पहचानता हूँ। नवाब साहब बेशक मुझे अपनी औलाद की तरह चाहते हैं, लेकिन मैं उनकी औलाद नहीं हूँ। सुरैया उनकी चहेती और इकलौती लड़की है। वही सब कुछ है।"

हमीदा ने कहा—

"आपने ठीक कहा; लेकिन सोचिये तो, मैं सुरैया बहन के हक़ पर किस तरह डाका डाल सकती हूँ? उनसे बढ़कर शरीफ़ लड़की मैंने इस दुनिया में नहीं देखी। वही आपकी मेहरबान भी हैं और मेरी भी। आपका फ़र्ज़ है कि आप उनका दिल न तोड़ें। और मेरा फ़र्ज़ मुझसे कह रहा है कि मैं मर जाऊँ लेकिन कभी अपने दिल में वह ख़याल न लाऊँ जो उनके दिल में परवरिश पा रहा है।"

इकबाल ने आश्चर्य से हमीदा की तरफ़ देखा और कहा—

"तुम्हारा मतलब यह है कि मैं और सुरैया, यानी वह और मैं, यानी हम एक दूसरे को चाहते हैं?"

"जी हाँ, मेरा यही मतलब है—जुबैदा बहन मुझे सब कुछ बता चुकी हैं। एक-एक बात अँगूठी छीनते वक़्त उन्होंने कह दी थी।"

इकबाल हँस पड़ा—

"बस, यही थीं तुम्हारी फ़ौलादी दीवारें?"

"जी, कह दीजिये ग़लत हैं?"

"अरे भई बिल्कुल ग़लत—तुम जुबैदा को अभी तक नहीं समझीं। मैंने उसका नाम बी जमालो रखा है। उसका काम ही यह है कि फ़ितने जगाये और हंगामे करे। वह कोई बात भी संजीदगी से नहीं कहती। महज़ अपनी दिलचस्पी के लिये बड़ा से बड़ा झूठ बोल सकती है और ख़तरनाक से ख़तरनाक बात कह सकती है। जुबैदा की खड़ी की हुई दीवारें फ़ौलाद की नहीं, रेत की होती हैं। उन्हें गिराने की ज़रूरत नहीं होती, खुद-ब-खुद गिर जाती हैं।"

हमीदा ने पूछा—

"तो सब कुछ झूठ था? वह झूठ बोल रही थी?"

इकबाल ने जवाब दिया—

"हाँ और क्या—तुम इतनी बेवकूफ़ हो कि तुमने यक़ीन कर लिया। अरे खुदा की बन्दी, इतना तो सोचा होता कि मेरा और सुरैया का जोड़ क्या ? मैं जमीन पर रहने वाला, वह आसमान में उड़ने वाली। मैं बेहद ग़रीब, वह अमीरज़ादी। मुसीबत मेरी क़िस्मत, ऐश उसकी ज़िन्दगी। मैं चाकर, वह मेरी मालिक। मैं उससे इश्क़ कर सकता हूँ ? वह मुझसे मुहब्बत कर सकती है ? मैं उसे खुश रख सकता हूँ ? वह मुझ से खुश रह सकती है ? क्या हर वक़्त अपनी नवाबज़ादी बीवी को देखकर मेरे अन्दर एसास-कमतरी (हीन भावना) पैदा नहीं होगा ? क्या हर वक़्त अपने पालक शौहर को देखकर उसे खुद अपने से शरम नहीं आयेगी ? क्या वह यह सोच-सोचकर मुझसे नफ़रत नहीं करने लगेगी कि उसके टुकड़ों पर पला आदमी उसका शौहर है ? क्या उसकी अमीरजादी सहेलियाँ उसका मज़ाक उड़ा-उड़ाकर उसकी ज़िन्दगी कठिन नहीं कर देंगी ? फिर मुझमें कौन से लाल जड़ें हैं ? मैं हुस्न में यूसफ़ नहीं, दौलत में उसके बराबर का नहीं। दुनिया में सबसे ज़्यादा अक़्लमन्द नहीं। मुझसे बेहतर लोग उसे मिल सकते हैं और मिलेंगे। लेकिन इकबाल को कोई और हमीदा नहीं मिलेगी। हमीदा को कोई और इकबाल नहीं मिल सकता। ये दोनों एक-दूसरे से जिस तरह निबाह सकते हैं; इकबाल और सुरैया नहीं, हरगिज़ नहीं।

"मैं सुरैया से मुहब्बत नहीं करता, उसकी इज़्ज़त करता हूँ। मुहब्बत तो सिर्फ हम-तुम कर सकते हैं। मेरी तरफ़ देखो, मेरी आँखों में आँखें डालो ; इनमें आज भी मुहब्बत के पैमाने छलक रहे हैं, जिन्हें इससे पहले तुम अक्सर देख चुकी हो।"

इकबाल सुरैया के और निकट आ गया। उसने हमीदा के हाथ अपने हाथ में ले लिए और कहा—

"बताओ; बोलो, अब क्या कहती हो ?"

हमीदा मुस्कराई और शरमाकर आँखें नीची करलीं। अब उसका

दिल बिल्कुल साफ़ हो चुका था। भ्रांति के मेघ छँट चुके थे। आशा और आकांक्षा का चाँद फिर चमकने लगा था। हमीदा ने पूछा—

"फिर यह अँगूठी का राज़ क्या है ?"

इकबाल ने जवाब दिया—

"कुछ भी नहीं—मेरी कामयाबी पर मुझे नवाब साहब, बेगम साहिबा वगैरा ने बहुत से तोफ़े दिये थे। यह तोफ़ा सुरैया ने दिया था। तोफ़ा देते वक़्त न उसके दिल में इश्क़ अँगड़ाइयाँ ले रहा था, और उसे क़बूल करते वक्त मेरा दिल भी कामदेव की मार से बिल्कुल बाहर था। अरे भई, यह झक-झक करते करते मेरे तो सर में दर्द होने लगा। समझ में आया कुछ ?"

हमीदा ने सब कुछ समझते हुए कहा—

"लेकिन जुबैदा बहन तो······"

इकबाल ने बात काट ली—

"फिर वही जुबैदा बहन—खुदा के लिए उसका नाम न लिया करो। आज तुम अपनी आँख से देख चुकी हो सारा तमाशा। तुम्हारे साथ जब उसने छेड़छाड़ की तो सुरैया ने कैसा झाड़ा है उसे ? उसकी ज़िन्दगी का तो मक़सद ही यही है।"

सुरैया, दरवाजे के बाहर दीवार से लगी हुई, इकबाल और हमीदा की बातें सुन रही थी। उसने समस्त वार्तालाप का एक-एक शब्द पूरी तन्मयता से सुना था। हमीदा उसकी दृष्टि में पवित्र और निरपराध एवं बेक़सूर थी।···और इकबाल ? इकबाल का भी उसे कोई दोष नज़र नहीं आ रहा था। उसने हमीदा और इकबाल को मन ही मन में क्षमा कर दिया। दोनों को एक दूसरे का स्वामी स्वीकार कर लिया। वह चुपचाप कमरे में आकर बिस्तर पर लेट गई। उसके मुख पर निराशा का भाव अवश्य था, लेकिन अभाव नहीं।

हमीदा ने कहा—

"मुझे डर है, मेरी ज़िन्दगी की नाव मँझधार में न डूब जाये।"

इक़बाल ने कहा—

"यह कैसे हो सकता है ? जब दिल के इरादे नेक हों तो दुनिया की कोई ताक़त हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती ।"

२२

सुरैया ने हमीदा और इकबाल की बातें सुन लीं और उन बातों को वह भुला न सकी। वह एक अद्भुत लड़की थी। उसमें पठार सा स्वाभिमान था, समुद्र की गहराई थी और आन पर जान को कुरबान कर देने वाली ज़िद थी। बचपन से उसका यह स्वभाव था कि वह रोब खाती कम थी, डालती ज्यादा थी। मन का रहस्य किसी पर प्रकट नहीं होने देती थी। वह इकबाल को हृदय की अतल गहराइयों से चाहती थी, लेकिन इस तरह कि अगर उसका बस चलता तो इस रहस्य को वह अपने ऊपर भी ज़ाहिर न होने देती। यह मालूम करके कि इकबाल उसे नहीं चाहता, उसकी जान पर बनी जा रही थी। लेकिन क्या मजाल कि उसने अपने हाव-भाव अथवा बातचीत से यह व्यक्त होने दिया हो कि प्यार का तीर उसके हृदय को छेद चुका है। वह धन-वैभव के झूले में झूली और लाड़-प्यार की गोद में पली; लेकिन उसके बर्ताव और स्वभाव में तनिक भी अन्तर नहीं आया। उसका स्वभाव अपने स्थान पर अटल था। वह अमीर थी, लेकिन ग़रीबों से प्यार करती थी। इकबाल क्या? एक यतीम लड़का, लेकिन सुरैया के मन पर राज्य कर रहा था। हमीदा क्या थी? एक प्रताड़ित और निराश्रित लड़की, लेकिन सुरैया की दृष्टि में उससे बढ़कर कोई प्यारा न था। ज़ुवैदा क्या थी? उसकी रिश्ते की बहन, जिसका बाप बेटी का ज़ेवर तक रेस और उसके दावों पर लगाकर हार गया था; लेकिन सुरैया की सबसे ज्यादा मुँह-चढ़ी और बेतकल्लुफ़ सहेली थी। नौकरों के साथ भी उसका व्यवहार

स्नेह-सना था। उसने कभी किसी को डाँटा नहीं। कभी किसी पर जुर्माना नहीं किया, कभी किसी को काम से हटाया नहीं। वह इनाम मुँहमाँगा दे सकती थी, लेकिन सज़ा देना उसके वश से बाहर था। यही वजह थी कि घर का हर छोटा-बड़ा उस पर जान छिड़कता था। उसके सर में दर्द होता तो सब व्याकुल हो जाते। उस व्याकुलता में प्रदर्शन नहीं होता था, जो प्राय: धनी लोगों के सम्मुख किया जाता है; बल्कि हृदय की अनुभूतियाँ होती थीं। यदि किसी तरह उसका धन-दौलत उससे छीन लिया जाता तो भी उसके लिये सब उसी तरह आतुर और व्याकुल दृष्टिगोचर होते, जिस तरह अब दिखाई देते थे।

सुरैया ने इकबाल और हमीदा की बातें सुनीं, और चुपचाप आकर बिस्तर पर लेट गई। रात को न जाने कब सोयी? नींद आई भी या नहीं? सुबह को जब उठी तो उसकी आँखें लाल थीं। शरीर भारी था। दिन भर वह टालती रही। अपनी मन:स्थिति को किसी पर प्रकट नहीं किया। सन्ध्या होते-होते इसे अच्छा-ख़ासा बुख़ार चढ़ आया। सबसे पहले ज़ुबैदा को यह हाल मालूम हुआ। उससे बेगम साहिबा को, उनसे नवाब साहब को, नवाब साहब से इकबाल को, इकबाल से हमीदा को। सारे घर में हलचल मच गई—सुरैया को बुख़ार है। सब उसके कमरे में एकत्रित हो गये। हर व्यक्ति यह चाहता था कि सुरैया की सेवा-शुश्रूषा के लिये अपने को समर्पित करदे। इकबाल को यह जमघट पसन्द नहीं आया। उसने कहा, "इस तरह तो इनकी तबीयत और ज़्यादा ख़राब हो जायेगी।"

बेगम साहिबा बोलीं—

"फिर क्या किया जाये बेटा?"

नवाब साहब ने कहा—

"किसी और डाक्टर को भी मशवरे के लिये बुलालो।"

इकबाल ने कहा—

"घबराहट की कोई बात नहीं। मामूली बुख़ार है, कल तक उतर

जायेगा। लेकिन मरीज़ के पास मजमा नहीं होना चाहिए। मैं चाहता हूँ सब लोग यहाँ से चले जाएँ। ज़ुबैदा और हमीदा देखभाल अच्छी तरह कर लेंगी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद मैं भी खबर लेता रहूँगा आकर।"

नवाब साहब ने सब से पहले उसकी बात पर आचरण किया। वह कमरे से बाहर चले गये। उनके पीछे बेगम साहिबा, उनके पीछे-पीछे सब लोग। केवल ज़ुबैदा और हमीदा भीतर रह गईं। इकबाल भी बाहर आ गया। आते समय उसने आदेश दिया कि प्रति दो घंटे के बाद दवा पिला दी जाया करे।

कई दिन गुज़र गये। मगर सुरैया का बुख़ार न उतरा। कभी तेज़ हो जाता कभी हल्का हो जाता। अब खाँसी भी आने लगी। चिकित्सा इकबाल की हो रही थी और वह अपने वक़्त का काफ़ी हिस्सा उसके पास गुजारता था।

एक दिन नित्यप्रति की भाँति इकबाल कुर्सी पर सुरैया के पास बैठा हुआ था। सुरैया ख़ामोशी से लेटी छत की ओर देख रही थी। ज़ुबैदा किसी काम से बेगम साहिबा के पास गई थी। और हमीदा दूसरे कमरे में नमाज़ पढ़ रही थी। इकबाल ने पहले सुरैया की नब्ज़ देखी फिर थर्मामीटर से बुख़ार देखा—सौ डिग्री था। वह चिंतित सा हो गया। सुरैया ने कहा—

"बुख़ार है?"

"हाँ—यूँ ही थोड़ा सा।"

सुरैया मुस्करा दी। उसने कहा—

"यही तो ख़तरनाक होता है।"

इकबाल घबरा गया।

"यह आप क्या कह रही हैं? मामूली बात है, चन्द रोज़ में आप चंगी हो जायेंगी।"

सुरैया ने कहा—

"आप मुझे तसल्ली देने की कोशिश न कीजिये। ज़िन्दगी मुझे इतनी

प्यारी नहीं है कि मैं मौत से डरने लगूँ। जानती हूँ, मौत से किसको निजात है।"

इक़बाल ने कहा—

"खुदा के लिये ऐसी बातें न कीजिये। मेरा दिल फटा जा रहा है।"

सुरैया मौन हो गई। वह फिर छत की ओर टिकटिकी बाँधकर देखने लगी। इक़बाल ने फिर बेताबी के साथ उसकी नाड़ी देखी और कहा—

"बुख़ार तो नहीं, हाँ हरारत है।"

सुरैया फिर मुस्कराई।

"घबराने की बात नहीं चली जायेगी।"

इतने में ज़ुबैदा आगई। थोड़ी देर बाद हमीदा भी आगई। इकबाल उठकर बाहर चला गया। हर थोड़ी देर के बाद बेगम साहिबा आतीं, सुरैया के माथे को चुम्बन देतीं और रोने लगतीं। आख़िर ज़ुबैदा ने उन्हें टोका—

"खालाजान! आप तो मेरे हाथ-पाँव भी रो-रोकर फुलाये देती हैं।"

सुरैया बोली—

"अम्मीजान; आप परेशान क्यों होती हैं? अव्वल तो मैं मरूँगी नहीं, और अगर मर भी गई तो.........."

बेगम साहिबा ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया।

"ख़बरदार जो आगे कुछ कहा। लो और सुनो! दूर पार इनके दुश्मन मरेंगे और हम बैठे क़यामत के बोरिये समेटा करेंगे।"

कोई दस बजे रात को इकबाल फिर आया। चुपचाप आकर कुर्सी पर बैठ गया। उसने ज़ुबैदा से पूछा—

"उन्होंने कुछ खाया?"

ज़ुबैदा ने कहा—

"नहीं—खाने के नाम से काट खाने को दौड़ती हैं।"

सुरैया मुस्करा दी ।

इकबाल ने कहा—

"भूख हो या न हो, ताक़त क़ायम रखने के लिये गिज़ा ज़रूरी है ।"

फिर वह ज़ुबैदा से सम्बोधित हुआ—

"साबूदाना बना लाइये ।"

ज़ुबैदा उठकर साबूदाना बनाने चली गयी । हमीदा ने इकबाल ने कहा—

"और दवा ?"

हमीदा बोली—

"दवा भी नहीं पीतीं ।"

इकबाल ने तनिक गुस्से से कहा—

"और तुम मान गईं । तुम लोग वाक़ई इनकी जान लेकर रहोगी ।"

इकबाल खुद उठा और अपनेहाथ से दवा बनाई और लेकर सुरैया के सामने आया ।

"ज़रा भी बदमज़ा नहीं है, पी लीजिये ।"

सुरैया उठकर गाओ तकिये के सहारे बैठ गई । इकबाल ने दवा दी । उसने पीली । पीकर मुँह बनाया, इकबाल ने तुरन्त पानी का गिलास सामने कर दिया । गिलास लेकर उसने कुल्ली की । दवा पीने और कुल्ली करने में वह निढाल हो गई । इकबाल और हमीदा ने मिल-कर उसे तकिये के सहारे लिटा दिया । इकबाल ने हमीदा से कहा—

"इनके लिये पान बनाओ ।"

हमीदा पान बनाने चली गई । कबाल ने फिर नब्ज़ पर हाथ रखा। फिर उसने पूछा—

"आप बीमार क्यों रहने लगी हैं ?"

"सुरैया ने मादक दृष्टि से इकबाल को देखा और क्षीण स्वर में कहा—

"मैं तो बिल्कुल बीमार नहीं हूँ, यह सब ज़ुबैदा की शरारत और

आपकी मेहरबानी है।"

इकबाल ने कहा—

"जुबैदा की शरारत में तो शक करना गुनाह है, लेकिन मेरी मेहर-बानी से आपका क्या मतलब ?"

सुरैया बोली—

"अच्छे-भले आदमी को भी अगर थर्मामीटर की कसौटी पर परखा जाये तो वह बीमार पड़ जायेगा। मैं न टोकती तो आपका हाथ जेब तक जा चुका था।

इकबाल भी मुस्करा दिया और उसने कहा—

"लेकिन आपने तो ऐसा मालूम होता है कि बुखार को पाल लिया है। कभी बुखार, कभी हरारत, यह माजरा क्या है ?"

"महमान को धक्का देकर बाहर निकाल देना मेरी आदत नहीं।"

"तो बुखार आपका महमान है ?"

"अनपढ़ ही सही, लेकिन है तो सही।"

"लेकिन आखिर क्यों ?

"यह भी मैं बताऊँ ? डाक्टर आप हैं या मैं ?"

इतने में हमीदा पान लेकर आ गई। सुरैया लेटी रही। हमीदा ने अपने हाथ से पान उसके मुँह में रख दिया। वह धीरे-धीरे उसे चबाने लगी।

२३

कई सप्ताह बीत गये मगर सुरैया की स्थिति में कोई अन्तर न आया, बल्कि 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।'

अब ज्वर ठहर गया था। यद्यपि डाक्टरों, हकीमों की सम्मतियाँ विभिन्न थीं, कोई क्षय रोग बताता कोई सिल बताता था और कोई दोनों। मतैक्य होने के बावजूद सब इस बात पर सहमत थे कि रोगी की दशा काफी शोचनीय है। यों सारा घर परेशान था। नवाब साहब के हाथों के तोते उड़े हुए थे, लेकिन बेगम साहिबा की दशा सबसे अधिक विचारणीय थी। वह बार-बार कमरे में आती थीं और प्यार की बलायें लेकर चली जाती थीं। वह बार-बार ईश्वर से प्रार्थना करती थीं कि उसकी आई मुझे आ जाय। मैंने दुनिया का हर रंग देख लिया। लेकिन मेरी बच्ची ने अभी क्या देखा है? हाय मेरे अल्ला! उसे कुछ हो गया तो...? उन्होंने सुरैया की चट-चट बलायें लेते हुए कहा—

"मेरी बच्ची, मैं तुझ पर क़ुरबान, अब क्या हाल है तेरा? कुछ तो मुँह से बोल।"

सुरैया ने क्षीण स्वर में कहा—

"अच्छी हूँ अम्मी; आप तो यों ही परेशान होती हैं।"

अत्यन्त करुणा से बेटी के मुरझाए हुए चेहरे की तरफ़ देखकर बोलीं—

"तू माँ की ममता को नहीं जानती मेरी जान; अपनी हजार जानें तुझ पर न्योछावर कर दूँ; तू अच्छी हो जाये। या मेरे अल्ला रहम

कर तू अपनी बन्दी पर ।"

यह कहते-कहते वह फूट-फूटकर रोने लगीं। हमीदा की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। जुबैदा ने खाला के गले में बाहें डाल दीं। उसकी सिसकियाँ और हिचकियाँ खाला से दो क़दम आगे थीं। सुरैया कुछ देर तक यह दृश्य देखती रही। फिर उसने जुबैदा से अभिहित होकर कहा—

"तुम अगर अभी से इतना रो लोगी तो मेरे बाद क्या करोगी? आँसू मेरे मरने के बाद के लिये भी तो रहने दो।"

बेगम साहिबा ने जल्दी से आँसू पोंछ डाले।

नवाब साहब बड़ी देर से दरवाज़े में खड़े यह तमाशा देख रहे थे। सुरैया के शब्द सुनकर भीतर आये और डाँटकर सबको खामोश किया। बेगम साहिबा से कहा—

"बेगम; तुम्हें क्या हो गया है? अगर सुरैया को खुदानाख्वास्ता कुछ हो गया तो इसका खून तुम्हारी गर्दन पर होगा।...तुम लोगों का फ़र्ज़ है कि इसे तसल्ली दो, इसका हौसला बढ़ाओ, इसमें ज़िन्दा रहने की उमंग पैदा करो; लेकिन रो-रोकर अपने साथ मेरी कमज़ोर और बीमार बच्ची की जान हल्कान किये दे रही हो।"

बेगम साहिबा ने जल्दी से आँसू पोंछ डाले और उठकर बाहर चली गई। नवाब साहब बेटी के पास चारपाई पर बैठ गये तथा उसके माथे पर स्नेह से हाथ फेरते हुए बोले—

"अब क्या हाल है, बेटी?"

"अच्छी हूँ अब्बा हजूर।"

"मैंने हकीम साहब से पूछा था। वह कह रहे थे, कोई घबराहट की बात नहीं है, तुम जल्द अच्छी हो जाओगी।"

"मुझे भी यही उम्मीद है अब्बा हजूर।"

इतने में इकबाल आ गया। नवाब साहब ने कहा—

"बेटा, मैं चाहता हूँ कर्नल असग़र से भी मुआयना करालो। पुराने

और तजुर्बेकार डाक्टर हैं। जिस मर्ज़ का शुबाह किया जा रहा है, उसके तो स्पेशलिस्ट हैं। क्या राय है तुम्हारी ?"

"बजा फ़रमाया आपने ; मैं अभी फोन करता हूँ।"

इकबाल फोन करने चला गया और नवाब साहब उठकर जनानख़ाने में पहुँचे। उन्होंने बेगम साहिबा से कहा—

"देखो, अब ऐसी गलती न करना—सुरैया पर हरगिज़ यह ज़ाहिर नहीं होना चाहिए कि वह ख़तरनाक तौर पर बीमार है। अगर उसके दिल में यह बात बैठ गई तो वह क़यामत तक अच्छी नहीं हो सकती, चाहे हज़रत लुकमान ही इसका इलाज क्यों न करें।"

बेगम साहिबा फिर रोने लगीं—

"मुझसे उसकी हालत नहीं देखी जाती। चन्द रोज़ में सूखकर काँटा हो गई है। खुदा इसे अपने हाथतले रखे। मैं तो इसे देखकर मायूस हो जाती हूँ।"

नवाब साहब झुँझलाकर बोले—

"फिर वही बातें। ज़रा तो समझ से काम लो। रोने-धोने से क्या वह अच्छी हो जायेगी ?"

इतने में कर्नल असग़र आ गए। उन्होंने बड़ी देर तक सुरैया की स्थिति का सर्वेक्षण किया। नवाब साहब को सान्त्वना देकर बाहर आये और इकबाल को अलग बुलाकर कहा—

"तुम डाक्टर हो, इसलिए तुमसे कहता हूँ। मरीज़ की हालत बहुत नाज़ुक है। मुझे डर है कि केस हाथ से निकल चुका है। मैंने जो नुस्ख़ा लिखा है, अगर एक हफ़्ते के अन्दर हालत सुधर गई तो ख़ैर, वरना फिर कोई उम्मीद नहीं।"

इकबाल की आँखों में आँसू भर आये, लेकिन उसने धैर्य से काम लिया। कर्नल असग़र के जाने के बाद नवाब साहब ने पूछा—

"क्या कह रहे थे ?"

'कहते थे, कोई ख़ास घबराहट की बात तो नहीं। लेकिन मरीज़ा

को सकून और आराम की बेहद ज़रूरत है। मगर मैं देखता हूँ, हर वक़्त वहाँ एक हजूम सा रहता है। इससे सेहत पर बुरा असर पड़ता है।"

नवाब साहब ने कहा—

"तो फिर इसे नरसिंग होम भेज दूँ ?"

"नरसिंग होम की राय तो मैं नहीं दूँगा। वहाँ वह आराम कहाँ मिल सकता है जो यहाँ है। लेकिन यह ज़रूर अर्ज़ करूँगा कि हमीदा और जुबैदा के अलावा सुरैया के कमरे में बग़ैर मेरी इजाजत के कोई न जाने पाये। चाहे वह आप ही क्यों न हों।"

नवाब साहब ने फ़रमाया—

"मैं समझ गया, तुम्हारा इशारा बेगम की तरफ़ है। मैंने उन्हें समझा दिया है, फिर समझा दूँगा; लेकिन वह भी मजबूर हैं। इकलौती और जवान लड़की, बाप की आँख का नूर, माँ के दिल का सरूर; वह देखते-देखते सूखकर काँटा बन जाये, जिन्दगी का चिराग़ झिलमिलाने लगे तो कौन संगदिल होगा जिसकी आँखें भर न आयेंगी।"

और यह कहते-कहते नवाब साहब भी बच्चों की तरह बिलबिलाकर रोने लगे। अब इकबाल भी अपने आँसू न रोक सका और जल्दी से आँसू पोंछता हुआ अन्दर चला आया और जिस समय यह बातें हो रही थीं, सुरैया, हमीदा से कह रही थी—

"उलझे हुए ख़्यालात को दूर करने और दिल को बहलाने की भी तुम्हें कोई तरकीब मालूम है ?"

हमीदा बोली—

"क्यों नहीं, बहुत सी।"

"मसलन ?"

"सैर, तफरीह, नाच, गाना—गाने में तो जादू का असर होता है।"

सुरैया कुछ काल तक किसी विचार में मग्न रही, फिर उसने कहा—

"सच कहती हो हमीदा—तो कुछ सुनाओ, ताकि वक़्त कटे और दिल बहले।"

हमीदा ने बेबसी के साथ कहा—

"मैं सुनाऊँ ?"

"हाँ तुम—कह दो मुझे गाना नहीं आता।"

हमीदा बोली—

"गाना और रोना किसे नहीं आता, लेकिन मैं बहुत मामूली सा गाना जानती हूँ।"

"कोई हर्ज नहीं, सुनाओ।"

हमीदा ने ग़ालिब की प्रसिद्ध गज़ल छेड़ी—

'हाँ वह नहीं वफ़ा परस्त जाओ वह बेवफ़ा सही।
जिसको हो दीन-व-दिल अजीज उसकी गली में जाये क्यों॥'

यह गजल हमीदा ने कुछ ऐसी तर्ज़ और ऐसी लय में गायी कि एक समा सा बँध गया। सुनने वाली और गाने वाली दोनों के दिल धड़कने लगे। दोनों की आँखें डबडबा आयीं। जुबैदा दरवाज़े की ओट में खड़ी चुपचाप यह दृश्य देख रही थी।

२४

नवाब साहब और बेगम साहिबा चिंतित और व्याकुल आमने-सामने बैठे हैं। अब दोनों ने महसूस कर लिया है—सुरैया की स्थिति गम्भीर है। वह चन्द दिन की महमान है। बड़े-बड़े हकीम और डाक्टर भी निराश हो चुके हैं। सुरैया उनकी इकलौती लड़की थी। उसकी जान से उन दोनों बूढ़ों की सारी आशाएँ सम्बन्धित थीं। उसकी ज़िन्दगी से दोनों ज़िन्दा थे। अगर वह दिन आगया कि वह न रही, तो फिर क्या होगा? नवाब साहब के एक ठण्डी साँस भरकर बेगम साहिबा से कहा—

"अब क्या होगा, बेगम?"

वह आतुरता से बोली—

"मैं नहीं जानती—अपनी सुरैया को मैं आपसे लूँगी।"

यह कहते-कहते उसकी आँखों में आँसू डबडबा आये। नवाब साहब ने अपने हाथ से बेगम के आँसू पोंछे और कहा—

"इंसान के बस में जो कुछ है, वह सब मैं कर चुका। अब क्या करूँ? यह समझ में नहीं आता।

"कौनसी की न दवा, कौनसी माँगी न दुआ—
हमने क्या-क्या न किया, तेरे सँभलने के लिये।"

नवाब साहब की आवाज़ भरी गई। उन्होंने अपने आँसू पोंछते हुए कहा—

"काश मैं अपनी ज़िन्दगी सुरैया को दे सकता!"

बेगम ने रोते-रोते कहा—

"और मैं भी—मैंने इसकी सलामती की गिड़गिड़ाकर दुआएँ माँगी हैं, ख़ैरात की है, सदका किया है, कुरबानी की है, रोज़े रखे हैं, उसके पलंग के गिर्द फेरे लगाकर, अपनी जिन्दगी उसे दी है और उसकी बीमारी खुद माँगी है; लेकिन किसी बात का भी कुछ असर नहीं दिखाई देता। मेरी सुरैया की हालत में कोई फ़र्क़ नहीं और मैं वैसी की वैसी बैठी हूँ।"

नवाब अभी कोई जवाब न दे पाये थे कि ज़ुवैदा घबरायी हुई अन्दर आयी। वह आते ही पुकारी—

"खालाजान, खालाजान !"

और इससे पूर्व कि खालाजान कोई उत्तर दें, वह उनके गले से लगकर रोने लगी। नवाब साहब और बेगम के पाँव के नीचे से ज़ुवैदा को रोता देखकर ज़मीन निकल गयी। उन्हें शक हुआ कहीं सुरैया ··कहीं सुरैया इस दुनियाँ से चली तो नहीं गई ! नवाब साहब ने पूछा—

"ज़ुवैदा, सुरैया कैसी है ?"

बेगम बोलीं—

"मेरी सुरैया का क्या हाल है, ज़ुवैदा ?"

ज़ुवैदा ने कहा—

"क्या बताऊँ खाला—मुझ से उसकी हालत नहीं देखी जाती। बचा लीजिये, खुदा के लिये बचा लीजिये उसे।"

बेगम बोलीं—

"ज़ुवैदा, क्या कह रही है तू ? हजार जानें कुरबान करदूँ अपनी सुरैया पर, कुछ बता तो सही।"

ज़ुवैदा ने अंतर्द्वन्द्व की स्थिति में कहा—

"अगर उसका ठीक इलाज न हुआ तो वह इस दुनिया से ख़फ़ा होकर चली जायेगी।"

नवाब साहब ने कहा—

"ठीक इलाज ? तुम क्या कह रही हो ज़ुवैदा ? हमने सुरैया की

बीमारी पर पानी की तरह रुपया बहाया है। हम अपनी सारी जायदाद उस पर न्योछावर कर देने को तैयार हैं, शहर के बड़े से बड़े, चोटी के डाक्टर-हकीम उसका इलाज कर रहे हैं। और क्या चाहती हो तुम ?"

बेगम साहिबा बोलीं—

"मैं यह महल दे दूँगी, मैं यह जायदाद दे दूँगी, मैं यह जेवरात, यह क़ीमती कपड़े, यह रुपये, यह सोना, यह चाँदी—हर चीज़ अपनी बच्ची पर न्योछावर कर दूँगी। लेकिन कोई उसे बचा ले।"

जुबैदा बोली—

"सुरैया का इलाज सिर्फ़ इकबाल के पास है।"

बेगम साहिबा ने आश्चर्य से कहा—

"कुछ बावली हुई है लड़की! इतने बड़े-बड़े हकीमों और डाक्टरों के मुकाबले में कल का छोकरा इकबाल क्या कर सकता है ?"

जुबैदा ने बच्चों की तरह मचलते हुए कहा—

"मैं फिर कहती हूँ, सुरैया का इलाज इकबाल के सिवा कोई नहीं कर सकता। वही उसका डाक्टर है, वही उसका मसीहा है। उसी के हाथ में उसकी जान है।"

नवाब साहब ने जरा बिगड़कर कहा—

"साफ़-साफ़ कहो।"

जुबैदा बोली—

वह दिलोजान से इकबाल को चाहती है, पूजती है। लेकिन शरीफ़ और सीधी लड़की है। प्यार की बात ज़बान पर नहीं लाती। इसी ग़म में घुली जाती है। खालू अब्बा अब वक्त न बरबाद कीजिये।"

नवाब साहब ने एक नजर जुबैदा पर डाली और पूछा—

"क्या वाक़यी ?"

"हाँ खालूजान! बिल्कुल सच।"

बेगम साहिबा भी इस समाचार को सुनने को तैयार न थीं।

"तू क्या कह रही है, जुबैदा ?"

"एक-एक बात सच कह रही हूँ। कुछ कीजिये वरना हाथ मलियेगा, पछताइयेगा।"

नवाब साहब ने गरजदार आवाज में कहा—

"अगर यह सच है, तो हमने बड़ा ज़ुल्म किया अपनी बच्ची पर! वह शरम-व-हया की तस्वीर पत्थर का कलेजा बनाकर ग़म के इस तूफ़ान को सहती रही!"

बेगम साहिबा ने कहा—

"यह कौनसी बड़ी बात है, अभी इन्तजाम करती हूँ। कल ही हो जायेगी शादी।"

नवाब ने बेगम से कहा—

"तुम इकबाल को मेरे पास भेज दो।"

और जिस वक्त जुबैदा, बेगम और नवाब की यह कान्फ्रेंस हो रही थी, हमीदा बेसुध एक शीशे के गिलास में दम किया हुआ पानी लेकर सुरैया के कमरे की तरफ़ जा रही थी। इतने में इकबाल सामने आगया। उसने पूछा—

"कहाँ जा रही हो हमीदा?"

वह बोली—

"सुरैया के पास—खुदा रहम करे, हालत बहुत नाज़ुक है। आप भी दुआ कीजिये।"

इकबाल ने कहा—

"मेरा रुआँ-रुआँ सुरैया के लिये दुआ कर रहा है। अगर वह न रही तो हमारी ज़िन्दगी भी तलख और बेकार हो जायगी।"

हमीदा ने कहा—

"चार ही दिन में नक़्शा बदल गया है। गुलाब का फूल सूखकर काँटा हो गया। या अल्ला! यह क्या हो गया, यह क्या हो रहा है, क्या होने वाला है?"

हमीदा पानी लेकर चली गई और इकबाल वहीं खड़ा रहा। वह

सुरैया की बीमारी से अत्यन्त चिंतित था। वह जानता था कि ख़तरा सर पर मँडरा रहा है तथा सुरैया का जीवित रहना कठिन है; लेकिन यह सब कुछ जानते हुए भी वह अपने मन को सान्त्वना देता रहता था कि वह अच्छी हो जायेगी; ज़िन्दा रहेगी। लेकिन हमीदा के चित्रण ने उसके मन को डाँवाडोल कर दिया था। वह इसी विचार में निमग्न खड़ा था कि बेगम आयीं। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। उन्होंने आते ही इकबाल की बलाएँ लीं और कहा—

"बेटा, सुरैया हमेशा तुम्हारी थी। अब वक्त आ गया कि तुम उसका दामन थाम लो। वह इस दुनिया से भागी जा रही है। तुम ही उसे मना सकते हो। सिर्फ तुम उसे रोक सकते हो। वह सिर्फ तुम्हारी बन कर ज़िन्दा रह सकती है, मेरे बच्चे!"

इकबाल निस्तब्ध खड़ा यह बातें सुन रहा था। फिर उसने अपनी बिखरती चेतना को केन्द्रीभूत करके कहा—

"यह आप क्या फ़रमा रही हैं? मेरी जान भी सुरैया के काम आ जाये तो मुझे इन्कार न होगा। बल्कि मेरे लिये फ़ख्र की बात होगी, लेकिन मैं आपका मतलब नहीं समझा। यह इनाम मेरी औक़ात से बढ़कर है।"

बेगम रुँधे हुए स्वर में बोलीं—

"तुम किस लायक़ हो, यह हमारे दिल से पूछो। एक आँख तुम हो, दूसरी सुरैया। बेटा, तुम्हें नवाब साहब ने बुलाया है, आओ।"

बेगम चली गईं। उनके जाते ही हमीदा अश्रुयुक्त नयनों से प्रविष्ट हुई। इकबाल ने कहा—

"ख़ैरियत?"

वह बोली—

"ख़ुदा वह दिन लाये।"

इकबाल ने पूछा—

"तुम्हारी आँखों में आँसू कैसे?"

हमीदा ने कहा—

"वही ! बल्कि और ज़्यादा ख़राब, खुदा रहम करे। मुझसे यह हालत नहीं देखी जाती। जिन्दगी बदली जा सकती होती तो मैं अपनी ज़िन्दगी सुरैया से बदल लेती।"

एक भावपूर्ण मुद्रा में इकबाल ने कहा—

यह हो सकता तो इकबाल तुमसे पीछे न रहता, लेकिन अब एक दूसरा सवाल पैदा हो गया है। एक तरफ़ फ़र्ज है, दूसरी तरफ मुहब्बत।"

इकबाल को चिंतित देखकर हमीदा ने कहा—

"मैं सब कुछ जान चुकी हूँ, मैं सब कुछ सुन चुकी हूँ। आज वक्त आया है कि इस ख़ानदान के एहसान का बदला चुकाओ।...तुम मेरी फ़िक्र न करो। मैं तुम्हें खुशी से इजाज़त देती हूँ। सुरैया को सुहागन देखकर जितनी राहत मुझे मिलेगी—वह शायद अपने सुहाग को देखकर भी नहीं हो सकती।"

इकबाल ने कहा—

"तुम मेरी मदद करो, हमीदा; बताओ मैं क्या करूँ ?"

हमीदा बोली—

"मैं तुम्हें मुहब्बत का वास्ता देती हूँ। सुरैया से शादी करलो। तुम्हारा यह एहसान मुझ पर होगा। मैं इस सब्र की देवी को मरता हुआ नहीं देख सकती। हाँ कहो, कह दो हाँ। मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़ती हूँ। मैं तुम से भीख माँगती हूँ। तुम मेरे हो और मैं बड़ी खुशी से तुम्हें सुरैया की ख़िदमत में पेश करती हूँ। जाओ, नवाब साहब तुम्हें बुला रहे हैं।"

इकबाल खामोशी के साथ नवाब साहब के दीवान ख़ाने में चला गया। वह प्रतीक्षा कर रहे थे। इकबाल सामने आकर सम्मान से खड़ा हो गया। नवाब साहब ने बैठने का संकेत किया। वह ख़ामोशी के साथ सामने बैठ गया। कुछ देर तक मौनता रही फिर नवाब साहब ने कहा—

"इकबाल, जानते हो, मैंने तुम्हें क्यों बुलाया है ?"

इकबाल ने कहा—

'आपका हुक्म सर-आँखों पर ; आप फ़रमायें, मैं उसकी तामील करूँगा ।"

नवाब साहब ने कहा—

"शाबाश ! तुमसे मुझे यही उम्मीद थी । तुम मेरे बुढ़ापे के सहारे हो, तुम्हीं से मेरी सारी आशाएँ सम्बन्धित हैं ।"

इकबाल ख़ामोश बैठा रहा । नवाब साहब ने वार्ताक्रम स्थिर रखा—

"मैं चाहता हूँ, अपने आख़िरी फर्ज़ को पूरा कर दूँ ।"

इकबाल ने कहा—

"खुदा आपका साया हमारे सर पर सलामत रखे । आप 'आख़िरी' लफ्ज़ का इस्तेमाल न कीजिये ।"

नवाब साहब ने कहा—

"बेटा, मैं चाहता हूँ कि सुरैया की शादी तुमसे कर दूँ ।"

इकबाल ने कोई उत्तर नहीं दिया । नवाब साहब ने पूछा—

"तुम्हें मेरी इस तजवीज़ से इख्तलाफ़ (विरोध) तो नहीं ?"

इकबाल ने कलेजे पर सिल रखकर उत्तर दिया—

"आपके हर हुक्म की तामील मेरा सबसे बड़ा फ़र्ज़ है ।"

नवाब साहब बोले—

"तुम्हारा जवाब उम्मीद के मुताबिक़ है । अब तुम जा सकते हो । मैं इन्तजाम करता हूँ । मुमकिन है कल ही यह शादी हो जाये ।"

इकबाल नवाब साहब के पास से उठकर अपने कमरे की ओर चला । उसके पाँव दो-दो मन के हो रहे थे । वह सुरैया को बचाना चाहता था । उसके लिए बलिदान करने से भी इन्कार नहीं कर सकता था । नवाब के, बेगम के, सुरैया के उस पर असंख्य अनुग्रह थे । क्योंकर सम्भव था कि वह अपनी निजी प्रसन्नता के सम्मुख इस परिवार की प्रसन्नता की उपेक्षा करता ? एक तरफ़ जहाँ उसका मन इस बात पर हर्षित था कि कर्त्तव्य-पूर्ति के समय वह दृढ़-प्रतिज्ञ रहा, वहाँ यह भाव भी प्रबल था

कि हमीदा उससे सदा-सदा के लिये छीन ली गई—वह हमीदा, जो उसकी कल्पना में बसी हुई थी, जो उसकी जिन्दगी बन चुकी थी, जिसे देख-देखकर वह जीता था। जिन्दगी के प्रोग्राम बनाता था।

जब वह अपने कमरे में पहुँचा तो हमीदा विद्यमान थी। आज की हमीदा पहले की हमीदा से सर्वथा भिन्न थी। वह लज्जा, वह संकोच, वह रख-रखाव आज उसमें नहीं था, जो उसका स्वभाव बन चुका था। आज की हमीदा निडर थी और वह स्वतन्त्रता के साथ इकबाल से बातें कर रही थी। हमीदा ने पूछा—

"आगये ?"

"हाँ।"

"क्या हुआ ?"

"वही जो तुमने कहा था।"

"फिर तुम्हारा चेहरा उतरा हुआ क्यों है ? तुम्हारी आँखें डबडबा क्यों रही हैं ? तुम खुश क्यों नजर नहीं आते ?"

"क्या मुझे यह भी करना होगा ?"

"हाँ—और अगर तुम न कर सके तो मेरी आँखों से अपनी इज्जत खो दोगे। मैं तुमसे मुहब्बत करती हूँ और जिन्दगी की आखिरी साँस तक करती रहूँगी। लेकिन अगर मैंने तुम्हें एहसान फ़रामोश (कृतघ्न), खुदग़र्ज़ और बुज़दिल पाया तो मेरी मुहब्बत नफ़रत में बदल जायेगी।"

इकबाल ने साश्चर्य हमीदा को देखा और कहा—

"यह तुम कह रही हो ?"

"हाँ; मैं कह रही हूँ।"

"तुम मुझसे नफ़रत करने लगोगी—तुम ?"

"हाँ, अगर तुम मेरी मुहब्बत के क़ाबिल साबित न हो सके।"

"लेकिन क़ाबलियत का सबूत किस तरह दूँ ?"

"खुशदिली के साथ—अपना फ़र्ज़ पूरा करके। इकबाल, एक बात न भूलो।"

"वह भी कह डालो ।"

"औरत का दिल मर्द के दिल से ज़्यादा नाज़ुक होता है । औरत मर्द के मुकाबले में कमज़ोर होती है । मैं औरत हूँ, तुम मर्द हो । तुम्हारे क़दम अगर डगमगा गये तो मैं क्या करूँगी ? क्या तुम मुझ से सबक़ हासिल नहीं कर सकते ?"

"क्यों नहीं, कर ही रहा हूँ ।"

"तुम मुझसे मुहब्बत करते हो, मैं तुमसे मुहब्बत करती हूँ । दुनिया का हर रिश्ता मिटने वाला है । लेकिन मुहब्बत अमिट है । हम एक-दूसरे के महबूब बनकर भी अगर एक-दूसरे के जिस्म के मालिक न बन सकें तो क़यामत नहीं आ जायेगी । सच पूछो तो हमारी मुहब्बत अब कसौटी पर रखी जा रही है । मुहब्बत के बाद अगर जिस्म की मिल्कीयत हासिल हो जाये तो मुहब्बत जीत तो जाती है, लेकिन उसे इम्तहान की आग में तपने का मौक़ा नहीं मिलता । हमें यह मौक़ा मिला है । हमें घबराना नहीं चाहिए ।"

इकबाल ने एक ठण्डी साँस भरी और कहा—

"ऐसा ही होगा, हमीदा ।"

"सच कहते हो ?"

"हाँ ।"

"क़ायम रहोगे अपनी बात पर ?"

"ज़रूर ।"

"फिर तुम्हारी मुहब्बत मुझसे कोई नहीं छीन सकता । ज़िन्दगी के आख़िरी लमहा तक हमीदा, इकबाल के सिवा किसी की नहीं बन सकती । मैं ज़िन्दगी के इस नये दौर पर तुम्हें मुबारिकबाद देती हूँ ।"

इकबाल ने परेशान होकर कहा —

"फलसफा ख़तम हुआ । अब तन्ज़ (व्यंग) की बारी है । क्या तुम मुझे ज़िन्दा न रहने दोगी ?"

"मैं तन्ज़ नहीं करती । तुम इम्तहान में पूरे उतरे । मैं सच्चे दिल

से तुम्हें मुबारिकबाद देती हूँ। लेकिन एक बात का ख़याल रखना।"

"वह क्या बात है ?"

"सुरैया को कभी यह महसूस न होने देना कि यह मारे-बाँधे की शादी है। तुम उसे नहीं किसी और को चाहते हो।"

"ऐसा ही होगा।"

"हमीदा और इकबाल में बातें हो रही थीं कि नौकरानी आई। उसने इकबाल से कहा—

"नवाब साहब ने बुलाया है।"

इकबाल बाहर चला गया। महफिल बिखर गयी।

२५

हमीदा, जुबैदा और बेगम साहिबा, सुरैया के कमरे में उसके पास बैठी हैं। चन्द खादमाएँ भी उदास खड़ी हैं। सबकी आँखों में आँसू भरे हुए हैं। बाहर से शहनाई की आवाज़ आ रही है। शादयाने बज रहे हैं। गोले दागे जा रहे हैं। पटाखे छोड़े जा रहे हैं। भव्य गोष्ठी का आयोजन हो रहा है। नवाब साहब एक कुर्सी पर बैठे हुक्क़ा पी रहे हैं। आसपास मित्र और मुसाहिब बैठे हैं। एक मुसाहिब ने कहा—

"हज़ूर, जान की अमान पाऊँ तो कुछ अर्ज़ करूँ ?"

नवाब साहब ने कहा—

"हाँ, हाँ, कहते क्यों नहीं ? कहो।"

वह बोला—

"इस महल में जब कभी शादी-ब्याह हुआ है, सारे लोग उमड़ आये। सुरैया बेगम के बारे में तो हमने समझा था कि सारे मुल्क को दावत दी जायेगी। मगर यहाँ तो हज़ूर के खादिमों के सिवा और कोई नजर नहीं आता। हम जैसे खानाजाद हैं, या पुराने मुलाज़िम या चन्द ख़ास दोस्त।"

नवाब साहब ने कहा—

"भई, बात यह है कि यह शादी—शादी नहीं है। उसकी तमहीद (पूर्वक्रम) है। सुरैया दुश्मनों के नसीब से सख्त बीमार है। वह ज़रा अच्छी हो ले तो फिर धूम-धाम देखना जी भर के।"

मुसाहिब ने अर्ज़ किया—

"तो हुजूर हमारे हाँ तो शगुण-पतरा नहीं देखा जाता। यह दावत तो सेहत ठीक होने के बाद हो सकती थी।"

"नवाब साहब बोले—

"ठीक कहते हो भई; मगर बात यह है कि लड़की की माँ की जिद्द है कि शादी जल्दी हो जाये। उनके दिल में यह बात बैठ गई है कि ब्याह होते ही बीमारी चली जायेगी। औरतों को तुम जानते हो; पुराने ख्याल की होती हैं। मैंने कहा—यही सही; चलो जरा घर की फ़िज़ा ही बदल जायेगी।"

मुसाहिब अपने स्थान से उछल पड़ा।

"ए सुवहान अल्ला; क्या दूरन्देशी है! खुदा हजूर को सलामत रखे। वाक़यी ठीक बात है।"

दूसरे मुसाहिब ने कहा—

"शादी की तमहीद—क्या फ़िक़रा कहा है! बात करने का हसीन अन्दाज़ बलायें लेता है, हमारे नवाब वाला की शान पर।"

और घर के भीतर वातावरण ब्याह से पोषित था। सुरैया इस समय अर्द्धमूर्छितावस्था में पड़ी हुई थी। बेगम साहिबा और हमीदा अपने-अपने कमरे में उठकर चली गईं। नमाज का वक्त तंग हो रहा था। उनके जाने के बाद सुरैया ने आँखें खोलीं और रुग्ण-स्वर में जुबैदा से कहा—

"शहनाई की आवाज?"

जुबैदा बोली—

"हाँ मेरी सुरैया; यह शहनाई की आवाज है।"

"शादयाने?"

"हाँ मेरी बहन, शादयाने बज रहे हैं।"

"यह क्या हो रहा है जुबैदा? शादी है? किसकी?"

"हाँ शादी है—ब्याह रचाया जा रहा है।"

सुरैया ने दुर्बल-स्वर में पूछा—

"ब्याह ? किसका ?"

जुबैदा ने खुशी का झूला झूलते हुए कहा—

"उठ, मैं तुम्हें दुलहन बनाऊँ; तेरा ब्याह है इकबाल से।"

सुरैया समझ गई—मामला क्या है। उसने झुँझलाकर कहा—

"यह तुम्हारी शरारत है, जुबैदा।"

"यही समझ लो।"

वह गुस्से से बोली—

"लेकिन यह नहीं हो सकता।"

"क्यों नहीं हो सकता! सुरैया, पागल न बनो।"

सुरैया बोली—

"क्या मेरी इन्सानियत का यही तकाज़ा है कि दो मुहब्बत करने वाले दिलों को मिलने न दूँ? उनके रास्ते में दीवार बनकर खड़ी हो जाऊँ ?"

जुबैदा ने सुरैया से कहा, "तुम इक़बाल से मुहब्बत नहीं करतीं ?"

"हरगिज़ नहीं करती। बिल्कुल नहीं करती। मैंने तुम से कब कहा कि मैं इकबाल से मुहब्बत करती हूँ ? और फर्ज कर लो, थोड़ी देर के लिये, करती हूँ तो ? क्या मेरी मुहब्बत का तक़ाज़ा यह है कि अपनी मुहब्बत की क़ुरबानगाह पर हमीदा और इकबाल को भेंट चढ़ादूँ ? उनकी मुहब्बत का गला दबादूँ ? यह मुहब्बत हुई या ज़बर्दस्ती और धाँधली ?"

जुबैदा ने कहा —

"सहन कर लोगी कि इकबाल की शादी किसी और से हो जाये, हाय मेरे अल्ला, तेरा दिल है या पहाड़ ?"

सुरैया ने उदासीनता से कहा—

"फिर वही बातें—मुहब्बत के लिये आखिर शादी क्यों ज़रूरी है ? क्या शादी के बग़ैर मुहब्बत नामुकम्मिल रहती है ? मुहब्बत अपनी जगह है और शादी अपनी जगह। तुम मुझे ग़लत समझीं। तुमने मेरा ग़लत रूप लोगों के सामने रखा। तुम बड़ी बेवकूफ हो, जुबैदा। आज मुझे मालूम हुआ कि नादान की दोस्ती, वाक़यी दुश्मनी होती है।"

जुबैदा ने तंग आकर कहा—

"तुम ऐसी क़ाबिल औरत से कौन सर फोड़े ? हमने अपनी हार मान ली। अरे हाँ, हम तो करें हमदर्दी और तुम न जाने क्या ऊटपटाँग बकने लगो।"

सुरैया बोली—

"तुम्हारी हमदर्दी का शुक्रिया ! लेकिन जो बात तुम जानती हो; उसमें उलझन क्यों हो ?"

जुबैदा बिगड़ उठी—

"तुम जो कुछ भी कहो, यह शादी होकर रहेगी। जो आग तुम्हें भस्म किये दे रही है, उसे अब न सुलगने दूँगी।"

सुरैया ने कहा—

"यह न कहो; यह कहो—जो आग तुझे जला रही थी उसे अब शोला बनाकर आन की आन में खाक बना दूँगी। शायद मैं चन्द दिन और जिन्दा रह जाती; लेकिन अब मैं नहीं बच सकती। सच है, मौत का वक़्त मुक़र्रर है। वह आगया, अब उसे कोई नहीं टाल सकता।"

इतने में बेगम साहिबा और हमीदा खादमाओं के झुरमुट में ब्याह का जोड़ा लेकर प्रविष्ट हुईं। बेगम ने सुरैया से कहा—

"मेरी बच्ची; तू जुग-जुग जीये। दूधों नहाये और पूतों फले। यह शादी का जोड़ा लायी हूँ। मैं तुझे अपने हाथ से दुलहिन बनाऊँगी।"

सुरैया ने जुबैदा की तरफ बेबसी से देखा। वह मुस्करा दी। सुरैया ने बेगम साहिबा से कहा—

"मैं खुद अपने हाथ से पहनूँगी यह जोड़ा, अकेले में।"

बेगम साहिबा बोलीं—

"खुदा तेरी मुरादें पूरी करे, यही सही। आओ जुबैदा चलें।"

सब लोग जाने लगे तो सुरैया ने हमीदा से कहा—

"तुम कहाँ चलीं ?"

वह खड़ी हो गई।

"बैठ जाओ।"

वह बैठ गई।

"जाओ, दरवाज़ा अन्दर से बन्द करलो।"

वह दरवाजा अन्दर से बन्द कर आई।

सुरैया ने कहा—

"जोड़ा निकालकर मेरे सामने लाओ।"

हमीदा ने चाँदी की किश्ती में से सुहाग का जोड़ा और ज़ेवरात निकाले और लाकर सामने रख दिये।

सुरैया ने हमीदा से कहा—

"तुम उदास क्यों हो ?"

हमीदा बोली—

"बिल्कुल नहीं, मैं तो बहुत ख़ुश हूँ।"

"यह जोड़ा कैसा है ?"

"अच्छा, बहुत अच्छा; बिल्कुल आपके लायक़।"

सुरैया ने दुपट्टा उठाकर हमीदा को दिखाया।

"यह कैसा है ?"

"बड़ा ख़ूबसूरत—यह सल्मा, यह सितारा, यह जगमग करते हुए सोने-चाँदी के तार, कितने अच्छे हैं ! कितने प्यारे हैं !'

सुरैया ने कमीज़ उठाई।

"और यह ?"

"इसकी तो तारीफ़ ही नहीं हो सकती।"

फिर सुरैया ने ज़ेवरात हमीदा की तरफ बढ़ा दिये।

"ये कैसे हैं ?"

"ऐसे ज़ेवर शहर में किसी के पास मुश्किल से निकलेंगे। ख़ुदा आप को मुबारिक करे।"

सुरैया कुछ देर सोचती रही, फिर उसने कहा—

"मुझे तो न यह जोड़ा पसन्द है, और न ज़ेवर।"

"यह आप क्या कह रही हैं ?"

"सच, अम्मा को न जाने क्या हो गया ? मेरा सबसे अच्छा जोड़ा छुपाकर रख छोड़ा है, और यह मामूली सा ले आयीं। मैं नहीं पहनूँगी। मैं तो वही पहनूँगी।"

"यही सही।"

"लेकिन यह कपड़े क्या होंगे ?"

"होंगे क्या ? संत कर रख दिये जायेंगे, फिर कभी पहन लीजियेगा।"

"क्यों री हमीदा, मेरी शादी है और तू मैले कपड़ों में घूम रही है। फिर कहती है कि तू खुश है ?"

"पहले आप पहन लीजिये; फिर मैं बदल आऊँगी कपड़े।"

"नहीं, तू यह पहन ले, मैं दूसरा पहनूँगी।"

हमीदा एक अद्‌भुत संघर्ष में रत हो गई। सुरैया ने कहा—

"तुमने सुना नहीं, मैं क्या कह रही हूँ ?"

"सुना तो…!"

"फिर तामील क्यों नहीं करती ?"

"आपका जोड़ा कैसे पहन लूँ ?"

"क्यों ? क्या यह नापाक है ?"

"तोबा, तोबा, नापाक क्यों होता !"

"नापसन्द है ?"

"यह लीजिये, नापसन्द क्यों होने लगा !"

"फिर क्यों नहीं पहनती, पहनलो !"

"बेगम साहिबा नाराज होंगी।"

"मेरी खुशी से वह नाराज होंगी ? तुम मुझसे ज्यादा उन्हें जानती हो ?"

हमीदा निरुत्तर हो गई। और अन्त में वह उसे किसी न किसी

तरह उसे पहनना पड़ा। और जब वह पहन चुकी तो सुरैया ने कहा—

"ये ज़ेवर ?"

"यह आप पहनियेगा।"

"फिर वही—मैं कह चुकी हूँ, मुझे न यह जोड़ा पसन्द है, न ये ज़ेवर; पहनो, जल्दी करो।"

हमीदा, सुरैया के आदेश का उल्लंघन नहीं कर सकती थी। ज़ेवर भी उसने अनमने भाव मे पहन लिये। यों भी वह कम सुन्दर न थी, लेकिन अब तो सोने में सुहागा वाला मामला था। सुरैया उसे देखकर मुस्कराई और बोली—

"बिल्कुल दुल्हन मालूम होती हो।"

हमीदा के इन्कार और सुरैया के अनुरोध में काफ़ी समय बीत गया। बेगम साहिबा [illegible] न हो सका। उन्होंने दरवाज़ा खटखटाया।

"मेरी बच्ची, दरवाजा खोल।"

हमीदा के चेहरे का रंग उड़ गया।

"अब क्या होगा ?"

"कुछ नहीं, देख क्या होता है ?"

"चुपके से खटका खोलकर मेरे पास आजा। मुँह मेरी तरफ़ कर, पीठ दरवाज़े की तरफ़।"

हमीदा ने अक्षरशः उसके कथन का पालन किया। थोड़ी देर के बाद फिर बेगम साहिबा ने पुकारा—

"सुरैया बेटी !"

सुरैया ने जवाब दिया—

"आ—इये।"

बेगम साहिबा और जुबैदा अन्दर आयीं और यह देखकर चकित रह गईं कि हमीदा दुल्हिन बनी बैठी है, और सुरैया वैसी ही। बेगम ने पूछा—

"यह क्या, बेटी ?"

फिर वह हमीदा से बोलीं—

"तुझे यह बदशकुनी करते शरम न आयी ?"

सुरैया ने कहा—

"अम्मा, अगर आपने हमीदा को कुछ कहा तो मैं अपना सर फोड़ लूँगी। इसने जो कुछ किया है, मेरे हुक्म से मजबूर होकर किया है। ये कपड़े मैंने इसे पहनाये हैं। यह ज़ेवर मैंने इसे दिया है।"

सुरैया रोने लगी। बेगम साहिबा नरम पड़ गयीं। उन्होंने कहा—

"अच्छा बेटा, हमीदा को कुछ नहीं कहती। तूने अच्छा किया, [illegible] कपड़े इसे पहना दिये, यह ज़ेवर इसे दे दिया। लेकिन [illegible] तू क्या पहनेगी ?"

"मुझे यह जोड़ा पसन्द न था, मैंने [illegible] । मैं दूस[illegible] ।"

"चल मेरे साथ, जो पसन्द [illegible] ।"

"अभी नहीं, फिर कि[illegible] ।"

"फिर किसी वक़्त ? बेटा, काज़ी आ चुके हैं, निकाह हो रहा है तेरा।"

सुरैया ने तनकर कहा—

"हाँ निकाह होगा, जरूर होगा; लेकिन मेरा नहीं हमीदा का। मैं इकबाल से शादी नहीं कर सकती।"

बेगम पर हिमालय गिर पड़ा।

"क्यों बेटी ?"

"भाई और बहन में शादी नहीं हो सकती। मैं इकबाल को अपना भाई समझती हूँ। बहन भाई से शादी करले, यह अंधेर कभी हुआ है इस दुनिया में ?"

बेगम साहिबा निरुत्तर होकर रोने लगीं—

"तो मैंने जो कुछ [illegible] था ?"

"बिल्कुल झूठ, सरासर अफ़साना।"

बेगम ने क्रुद्ध-दृष्टि से ज़ुबैदा को देखा।

"जुबैदा ?"

सुरैया बोली—

"इसे कुछ न कहिये; इसे माफ़ कर दीजिये, यह बेवक़ूफ़ है।"

कुछ देर तक सन्नाटा सा छाया रहा। ऐसा मालूम होता था, सबको साँप सूँघ गया है। सुरैया ने कहा—

"अम्मा, इकबाल और हमीदा की शादी अभी होनी चाहिए।"

वह बेदिली से बोलीं—

"हो जायेगी, जल्दी क्या है ?"

"...भी होगी। फौरन होनी चाहिए। आप अगर यह चाहती हैं कि मे... हो जाये तो उसकी एक ही सूरत है—इकबाल और ह...दा की श...अम्मा अभी कुछ देर मैं जिन्दा रहना चाहती हूँ। बस, आप मेरी यह आ... नहीं पूरी होने देंगी ! मैं अब जिन्दा नहीं रह सक...। मौत का फ़... मेरे पास बैठा है। मैं अब कोई दम की मेहमान हूँ। अम्मा, वक्त बिल्कुल नहीं, जल्दी कीजिये।"

बेगम ने कहा—

"बेटी, कलेजे पर तीर न मार। ऐसी बातें न कर। तेरी खुशी के लिये मैं आसमान से तारे तोड़कर ला सकती हूँ। तू इकबाल से शादी नहीं करना चाहती, न कर; तू हमीदा और इकबाल की शादी पसन्द करती है, यही होगा। अभी होगा, लेकिन वायदा कर जिन्दा रहेगी, मरेगी नहीं।"

सुरैया ने कहा—

"अम्मा, यह वायदा मैं किस तरह कर सकती हूँ। सिर्फ़ यह वायदा कर सकती हूँ कि अगर आपने मेरी यह तमन्ना पूरी कर दी तो मैं खुशी से मरूँगी; कोई हसरत अपने साथ न ले जाऊँगी। लेकिन अम्मा, मेरी हालत गैर हो रही है। मेरे बदन में सनसनी हो रही है। मेरे पाँव ठंडे पड़ चुके हैं। वक्त तेजी से गुजर रहा है। ऐसा न हो······"

बेगम साहिबा स्थिति को भली भाँति समझ चुकी थीं। उन्होंने

अपने आँसू रोककर बड़ी दृढ़ता से कहा—

"अभी ले; जो तू कह रही है, अभी होगा।"

वह तुरन्त बाहर आयीं। नवाब साहब को बुलाया। वह घबराये हुए आये। बेगम ने पूछा—

"इकबाल दूल्हा बन गया?"

"हाँ बन गया।"

"काज़ी साहब आ गये?"

"आ गये।"

"इकबाल से सुरैया की नहीं, हमीदा की शादी होगी। इकबाल और काज़ीजी दोनों को बता दीजिये।"

नवाब साहब आश्चर्य से बोले—

"यानी क्या....!"

"मैंने जो कुछ कहा आप सुन चुके हैं। मेरा और वक्त खराब न कीजिये। सुरैया मर रही है और यह उसकी आखिरी तमन्ना है कि वह इकबाल और हमीदा की शादी देख ले।"

"मैं डाक्टर को बुलाता हूँ।"

"डाक्टर की अब जरूरत नहीं। अब वह नहीं बच सकती। मैं सब कुछ समझ चुकी हूँ। जाओ, जल्दी करो।"

नवाब साहब ने पूछा—

"लेकिन इकबाल और सुरैया?"

"हाँ—वह सच भी है और गलत भी।"

"क्या कहा?"

"यह सच है कि वह इकबाल से मुहब्बत करती है। लेकिन यह गलत है कि वह उससे शादी करना चाहती है। मैं उसकी माँ हूँ, मैं अपनी बच्ची को पहचानती हूँ। अब मुझे दिक न करो। जाओ, अपना काम करो।"

नवाब साहब रोने लगे। बेगम ने कहा—

"मुझ से सबक़ लो। मुझे तुम से ज्यादा रोना आ रहा है। मैं तुमसे ज्यादा रोऊँगी, लेकिन अभी नहीं—अब अगर तुम न गये तो मैं खुद बुर्का ओढ़कर बाहर जाऊँगी और अपनी बच्ची की मुराद पूरी करूँगी।"

नवाब साहब घबराये हुए बाहर आये। उन्होंने इकबाल को अलग बुलाकर कहा—

"तुम्हारी शादी हमीदा से हो रही है।"

वह चकराया।

"क्या फ़रमाया ?"

"सुरैया शादी पर रजामन्द नहीं है। उसका इसरार है कि काज़ी साहब वापस न जायें। उसने अपने हाथ से हमीदा को दुल्हिन बनाया है और इस पर अड़ गई है कि उसकी शादी तुम्हारे साथ कर दी जाये। ...बेटे, अब वह ज्यादा देर तक जिन्दा नहीं रहेगी। ज़िद्दी और हठी लड़की है। मैंने और बेगम ने उसकी हर ज़िद हमेशा पूरी की है। यह ज़िद भी मैं उसकी पूरी करना चाहता हूँ—अगर तुम्हें इख्तलाफ़ न हो ?"

इकबाल खामोश रहा। नवाब साहब बोले—

"बोलो, क्या कहते हो ?"

"मैं क्या अर्ज़ कर सकता हूँ, जो आप हुकम देंगे मैं वही करूँगा।"

"तो आओ।"

इकबाल काज़ी साहब के सामने बैठ गया। नवाब साहब ने दुल्हिन का नाम काग़ज़ पर लिखकर काज़ी साहब को दे दिया। दोस्त और मुसाहिब सुरैया की बजाये हमीदा का नाम सुनकर चकित हुए। निकाह—विवाह—होगया। मौक़ा वार्तालाप का नहीं था। विवाह-प्रथा के तुरन्त बाद अन्दर से बुलावा आया। नवाब साहब इकबाल को लेकर अन्दर पहुँचे। सारा घर वहीं जमा था। हमीदा दुल्हिन बनी हुई सुरैया के पास बैठी थी। दूसरी तरफ इकबाल दूल्हा बना हुआ बैठ गया। सुरैया खामोशी से पलंग पर लेटी हुई थी। उसकी आँखें दरवाज़े पर जमी

हुई थीं। इकबाल को देखकर एक तरफ़ तो सुरैया के चेहरे पर चमक आयी और तुरन्त लुप्त हो गई। उसने इकबाल और हमीदा का हाथ एक दूसरे से मिलाते हुए इकबाल से कहा —

"हमीदा का ख़याल रखियेगा। बड़ा चमकदार मोती मैंने आप के हाथ में दिया है—हमीदा को आख़िरी तोह्फ़े के तौर पर मैं भेंट करती हूँ। इसे क़बूल कीजिये। इसे सँभालकर रखियेगा। अगर आपने इस मेरे आख़िरी तोह्फ़े के साथ कभी भी बेपरवाही बरती तो मैं आपको माफ़ नहीं करूँगी।"

इकबाल सर झुकाये सुरैया की बातें सुनता रहा। न जाने वह क्या सोच रहा था कि उसकी आँख से गर्म-गर्म आँसू की एक बूँद गिरी सुरैया के हाथ पर। वह चौंक पड़ी। उसने एक दृष्टि इकबाल पर डाली और कहा—

"अच्छा, अब रुख़सत।"

इकबाल अपने कमरे में चला आया। हमीदा अपने कमरे में चली गई। नवाब साहब बाहर आ गये। बेगम साहिबा भी अपनी बारहदरी में पहुँच गयीं। मात्र जुबैदा चट्टान की तरह अपनी जगह पर जमी बैठी थी। जब सब चले गये तो सुरैया ने जुबैदा से कहा—

"कहो, जीत किसकी हुई?"

जुबैदा ने धीरे से कहा—

"तुम्हारी।"

सुरैया ने क्षीण स्वर में कहा—

"मुझे बहुत अफ़सोस है कि तुम न समझ सकीं।"

जुबैदा रोने लगी। उसने कहा—

"अब मैं समझ गई, माफ़ करदो सुरैया। मैं तुम्हारी मुजरिम हूँ।"

"यह न कहो जुबैदा—तुम मेरी बहन हो। जुबैदा, मेरी आँखों के नीचे अँधेरा छा रहा है, अम्मी को बुलाओ।"

जुबैदा दौड़ी-दौड़ी गई और बेगम साहिबा को बुला लाई। जब वह

पहुँचीं तो उसका साँस उखड़ चुका था। माँ को देखकर उसकी आँखों में आँसू भर आये। लेकिन व्याकुल माँ इस समय संतोष की प्रतिमा बनी हुई थी। उसने सिरहाने बैठकर 'यासीन' का पाठ शुरू कर दिया और संकेत से नवाब साहब को बुलाने का आदेश दिया। जुबैदा, नवाब साहब, इकबाल और हमीदा सभी को बुला लाई। जब ये सब कमरे में पहुँचे तो उस समय वह अन्तिम श्वास ले रही थी। नवाब साहब और इकबाल धाड़ें मार-मारकर रोने लगे, लेकिन बेगम पूर्व की नाईं सिरहाने बैठी पाठ कर रही थीं। माँ की ममता अपने कर्त्तव्य-पालन से कभी अनभिज्ञ नहीं होती।'